योग सिद्धान्तों एवं शिक्षाओं का प्रतिपादक मासिक

सिद्धयोग

संस्थापक : योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

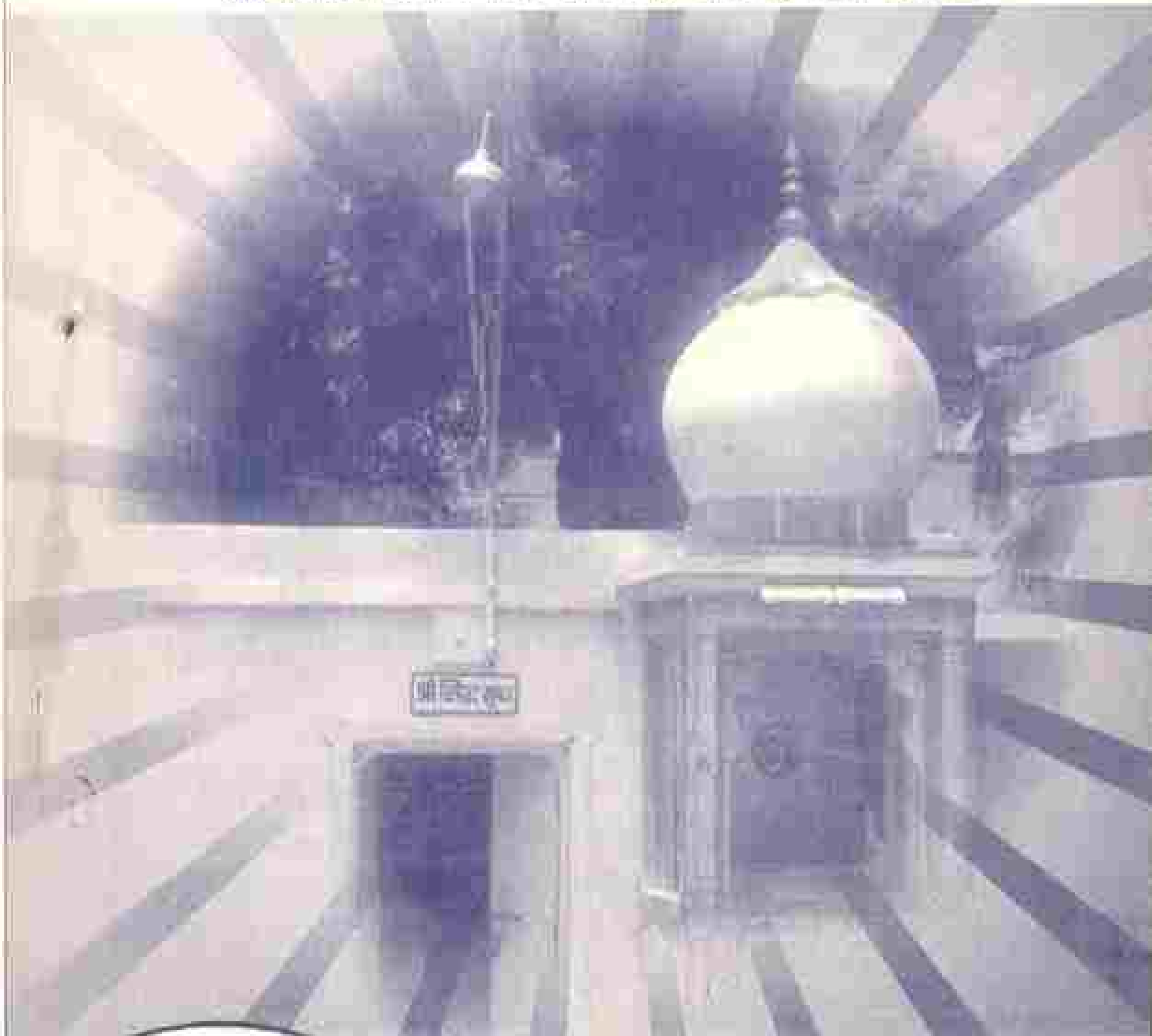

वर्ष : 39 - अंक : 4
जुलाई, 2006

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन

सँवाई-283202 (आगरा) उ.प्र.

सवांई में श्री गुरुपूर्णिमा व रुद्र महायज्ञ

11 जुलाई 2006 को

गुरु पूर्णिमा का उत्सव

धूम–धाम से श्री सिद्धगुफा सवांई में
प्रति वर्ष की भाँति मनाया जायेगा।
गुरु पूर्णिमा के एक दिन बाद ही 13 जुलाई से

रुद्र महायज्ञ

का कार्यक्रम प्रारम्भ होगा।
आचार्य बैकुण्ठ शर्मा के आचार्यत्व में
यह यज्ञ 23 जुलाई 2006 तक चलेगा।
23 तारीख को पूर्णाहुति के साथ ही
इस यज्ञ का समापन हो जायेगा।

श्री योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक महोत्सव सम्पन्न

प्रति वर्ष की भाँति इस वर्ष भी योग साधन आश्रम ऋषिकेश का वार्षिक महोत्सव 4, 5 व 6 जून को धूम–धाम से मनाया गया। 4 जून को प्रात: 5 बजे प्रभात फेरी निकाली गई। उत्सव में पंजाब, हरियाणा, हिमाचल प्रदेश, उत्तर प्रदेश, दिल्ली व मध्य प्रदेश के गुरु भाई–बहिन बहुतायत से पहुँचे। तीनों दिन भजन, संकीर्तन व प्रवचनों का कार्यक्रम चलता रहा। 6 जून को भण्डारा के साथ ही उत्सव का समापन हुआ। 7 जून को सभी अपने गन्तव्य की ओर चल पड़े। इस प्रकार धूमधाम से उत्सव का समापन हुआ।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक-पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 39
अंक 4

जुलाई
2006

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्त्यर्थान् बहुतर विशदान् योगशास्त्रोपदेशान्,
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

सरस्वती-स्तुति

हंसारूढा हरहसितहारेन्दुकुन्दावदाता,
वाणी मन्दस्मिततरमुखी मौलिबद्धेन्दुलेखा।
विद्यावीणामृतमयघटाक्षस्त्रजा दीप्तहस्ता,
श्वेताब्जस्थां भवदभिमतप्राप्तये भारती स्यात्।।

अर्थात्

जो हंस पर सवार हैं, शिवजी के अट्टहास, हार, चन्द्रमा और कुन्द के समान उज्ज्वल वर्ण वाली हैं तथा वाणीस्वरूपा हैं, जिनका मुख मन्द-मुस्कान से सुशोभित है और मस्तक चन्द्ररेखा से विभूषित है तथा जिनके हाथ पुस्तक, वीणा, अमृतमय घट और अक्षमाला से उद्दीप्त हो रहे हैं, जो श्वेत कमल पर आसीन हैं, वे सरस्वती देवी आप लोगों की अभीष्ट-सिद्धि करने वाली हों।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :
योग-योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक :
आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक :
डा. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक :
समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई-बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज 3
2. सम्पादकीय 12
3. दैवी सम्पदा का अधिकारी कौन ? – वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर 15
4. आदर्श और सर्वांगीण विकास – राजेश कुमार सिंह, बलिया 18
5. श्री प्रभु चरणों में समर्पित – राजेश कुमार सिंह, बलिया 20
6. सुर भी तेरा, स्वर भी तेरा – जगदीश बंसल राय 'अधम', गोहाना मंडी 21
7. अमृतकण 23
8. गुरु स्तुति – मोतीराम गर्ग, अलुपुर 24
9. उपनिषद् गुरु-वाक्य है – श्रीदशरथ जी श्रोत्रिय 25
10. संजीवनी पेय – श्रीविट्ठलदास जी तोष्णीवाल 27
11. धार्मिक व्रतों से आरोग्य की प्राप्ति – डा० केशव जी कान्हेरे 29
12. गीतोपनिषद् – स्वामी श्री राजेश्वरानन्द जी 32
13. हिमालय के अमर महायोगी – पूर्णचन्द्र पन्त 36

एक प्रति	: रु.	10.00
वार्षिक शुल्क	: रु.	110.00
द्विवार्षिक	: रु.	200.00
आजीवन	: रु.	825.00

❑ विशेष लेख

श्री प्रभुजी का अमोघ संकल्प एवं करुणा कृपायें

योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

देखो ! मैं आज तुम्हें यह समझाना चाहता हूँ कि महापुरुषों के मन कितना काम किया करते हैं। जिस समय भगवान राम के चरित्र और श्री कृष्ण के चरित्रों को हम पढ़ते हैं तो उसमें इस प्रकार की बहुत सी बातें मिलती है कि संकल्प हुआ सत्युग के समय में और उसका भुगतान द्वापर में हो रहा है। शूर्पणखा भगवान राम के पास गई ! उनके सुन्दर रूप को देखकर उस के मन में थोड़ी सी भावना बन गई कि राम हमारे पति हों, इनके साथ हमारी शादी होनी चाहिए। किन्तु राम की पत्नी बनने के लिये उसको कितनी कुर्बानी की आवश्यकता थी, उसका अन्तःकरण कितना ऊँचा निर्मल होना चाहिये था, उसका त्याग कितना ऊँचा होना चाहिए था, इसका उस बेचारी राक्षसी को क्या ज्ञान था ? उसने तो अपने जीवन में निरामिष भोजन किया था तामस देह था उसका, जंगलों में ऋषि मुनियों को सताया करती थी। किन्तु संकल्प राम के प्रति बना कि राम मेरे पति हों और श्री राम ने उसके हृदय की चाह को देखा। यद्यपि वे पूर्ण हैं, आप्त काम हैं, उनमें कमी नहीं है किसी प्रकार की, किन्तु यहाँ एक राक्षसी का संकल्प देखा, जो मन में भावना बनी थी। श्री राम ने सोच लिया संस्कार बन गया है किसी समय इसका भुगतान होना चाहिये। सुनते हैं कुब्जा वही शूर्पणखा थी जिसका कृष्णावतार में भगवान ने उद्धार किया। उसका संकल्प था और इस प्रकार से उसका भुगतान हुआ। श्री राम को जनकपुर में सीता की सखियों ने देखा। उनके मन में भी यह संकल्प बना कि ये हमारे पति होते। उनके इस संस्कार का भुगतान द्वापर में हुआ। ये सखियाँ ही गोपियों के रूप में आई और भगवान का सान्निध्य उन्हें मिला।

इस समय मुझे श्री प्रभु जी के चरणों का स्मरण आ रहा है उनसे सम्बन्धित एक घटना याद आ रही है। लाहौर में एक विरक्त महात्मा रहते थे उनका नाम था शहनशाह। वे अनुभवी सन्त थे। उनकी एक पुस्तक मिला करती है 'पैमाने शहनशाह'। पुस्तक के ऊपर एक शेर लिखा रहता है–

''चाह गई चिन्ता मिटी मनुआ बे परवाह
जिसको कछु न चाहिये सो जग शहनशाह''

भावार्थ है कि जिस के मन में कोई कामना नहीं है वह बादशाह है, शहनशाह है। बात भी ठीक है। हम जितने कामनाओं के पीछे लगते हैं उतने ही हम दरिद्र हैं, कंगाल हैं

पराधीन हैं, दूसरों के नाच नचाने पर नाचते हैं। एक संस्कार भुगतान के लिये सारे कर्म करने पड़ते हैं। लाहौर के महात्मा शहनशाह के स्मरण आने का एक कारण था। हमारे बड़े गुरुभाई मुल्खराज थे। श्री प्रभु जी ने उन पर विशेष कृपा की थी। वह बाजार में तुरीय स्थिति में ध्यान मग्न हुये निकल रहे थे। महात्मा शहनशाह ने उन्हें बाजार से निकलते देखा। उन्हें देखकर उन्होंने कहा–"बेटा ! ठहर जाओ !" उन्होंने रुक कर कहा–महाराज ! क्या आज्ञा है ? महात्मा ने कहा–तू कृतार्थ हो रहा है, निहाल हो रहा है। तुम्हें जो सद्गुरु मिल गये हैं वे तुम्हें परिपूर्णतम स्थिति के अन्दर छोड़ेंगे। तुम्हें वे मिल गये हैं जो सब प्रकार से परिपूर्ण हैं और अपूर्णों को पूर्ण बनाने वाले हैं।

वहाँ गुफा पर पहले एक श्लोक लिखा रहता था, आजकल नहीं है। वह श्लोक था **"यस्य प्रसादात् पतितास्सुपावना भवन्ति संसार सुतारणा शिवाः योगेश्वराणाम् परमेश्वरं हरिं श्री रामलाल प्रभुमीशमाश्रये"** श्लोक का अर्थ यह है कि जिनकी कृपा के कण को पाकर के, कृपा प्रसाद को पाकर के अत्यन्त महापतित भी अत्यन्त पवित्र हो जाते हैं वह संसार को तारने वाले बन गये। योगियों के ईश्वर उन परमेश्वर श्री रामलाल की मैं शरण लेता हूँ।

महात्मा शहनशाह ने कहा–तुम बहुत बड़ी जगह पहुँच गये हो, वहीं तुम्हारा सब प्रकार से कल्याण ही कल्याण है। इस प्रकार दो चार मिनट बात करने के पश्चात् महात्मा जी कहने लगे–"किसी समय मन में संकल्प बन गया था कि तुम्हें फिर मिलेंगे। इस संकल्प के भुगतान का समय अभी तक नहीं आया था। उसके भुगतान का समय अब आया इसलिये मैंने तुम्हें बुलाकर बातें की हैं।" कभी किसी जन्म में संकल्प बना। संकल्प ज्यों का त्यों कायम रहा। वह संकल्प छिन्न भिन्न नहीं हुआ। हमारे तुम्हारे साधारण सांसारिक लोगों के जो संकल्प हैं वे रात दिन बनते बिगड़ते रहते हैं। मैं तुम्हें केवल मात्र एक बात समझाना चाहता हूँ कि महापुरुषों के मन में बना हुआ संकल्प कभी बिगड़ने वाला संकल्प नहीं होता। उनके मन में यदि आ जाये–वह यह सोच लें कि "यह मेरा है" तो उसे दुनियाँ में कोई छीन नहीं सकता, दुनियाँ में उसका कहीं बाल बाँका नहीं हो सकता। वह 'मेरेपन' की जो मुहर उन्होंने लगा दी वह उनका शुद्ध संकल्प है। क्योंकि वे सत्य संकल्प हैं।

मैंने कभी–कभी तुम्हें सत्य की महिमा बतलाते हुये समझाया है कि यदि एक मनुष्य साल छः महीने लगातार मन वचन और कर्म से सत्य का आचरण करने वाला बन जाये तो वह भी सत्य संकल्प बन जाता है। मन, वचन और कर्म से सत्य का आचरण करने वाले का एक लक्षण होता है वह है– **"मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम"** अर्थात् मन में वही बात, वाणी में वही बात और कर्म में भी वही बात ! ये तीनों चीजें एक रूप में महात्माओं की हुआ करती हैं। मन में आया कि मैं एक हजार व्यक्तियों को भोजन कराऊँ। उसके बाद क्रियात्मक रूप में भी एक हजार व्यक्तियों को भोजन करा दिया तो यह सत्य संकल्प हुआ। मन में विचार आया हजार व्यक्ति का भोजन करायेंगे। किन्तु वाणी से कह

दिया बीच पच्चीस का भोजन करायेंगे और जब भोजन कराने का मौका आया तो वह भी छोड़ दिया इसको सत्य संकल्प नहीं कहते हैं। जो दिन भर में हजारों प्रकार का झूठ बोला करता है। जिसकी वाणी में सत्य का लवलेश नहीं होता, पल में कोई बात कही, दूसरे ही पल उसे बदल दिया तो समझ लेना चाहिये कि इसका विवेक नष्ट हो गया है और ऐसे व्यक्ति के संकल्प कभी सत्य नहीं हुआ करते। अस्तु !

इस धाम (श्री सिद्ध गुफा सवाई) को देखकर श्री प्रभु जी के चरण कमलों का मुझे स्मरण आया और उसका कारण था कि हम लोग इतने इकट्ठे हुये–हुये हैं और श्री प्रभु जी की महिमा गा रहे हैं उनका गुणानुवाद कर रहे हैं। वे सर्वसमर्थ योगेश्वर हैं। उनके मन में संकल्प बना होगा, कोई विचार होगा कि इस प्रकार से चारों तरफ से हमारे बच्चे इकट्ठे होंगे और ये गुणानुवाद गायेंगे। और इनका इतना इतना भुगतान हमने देना है। इतना इतना करना है। वे योगेश्वर हैं और कृपा से उनका भुगतान कर रहे हैं। मैं कहना क्या चाहता हूँ ? मैं यह कहना चाहता हूँ कि यह स्वर्ण अवसर हम सबको मिला हुआ है। देखो ! पहली बात तो यह है संसार के अन्दर योगनिष्ठ बनना, योग के विचार पैदा होना यह बहुत ऊँची चीज है और यह भाग्यवादी व्यक्ति के अन्दर हुआ करता है।

कई बार लोग मुझसे प्रश्न किया करते हैं कि परमात्मा की ओर चलने का सबसे श्रेष्ठ रास्ता कौन सा है ? वैसे परमात्मा की ओर जाने के तीन मार्ग संसार में प्रचलित हैं वे हैं भक्ति मार्ग, ज्ञान मार्ग और योग मार्ग ! कोई मुझसे पूछता है इनमें से कौन सा उत्तम है ? उनको मैं एक ही जवाब दिया करता हूँ कि भई ! उत्तम–अनुत्तम की बात तो तुम सोच लो किन्तु मैं तुमसे एक बात पूछना चाहता हूँ कि वह यह कि भगवान श्री कृष्ण चन्द्र ने कौन–सा मार्ग माना। भगवान कृष्ण चन्द्र को जगह जगह पर किस नाम से सम्बोधित किया गया है। उनको किसी ने पुकारा है तो किस नाम से पुकारा है ? मैं ही उसका उत्तर देता हूँ। देखो ! एक बार भगवान यमुना तट पर गये। वहाँ काली देह पर विषैला जल पीकर ग्वाल बाल और गौयें मर गईं। भगवान् ने देखा–यह सब मरे पड़े हैं–तब क्या हुआ ?

''वीक्ष्य तान वैतथा भूतान कृष्णे योगेश्वरेश्वरः
ईक्षया मृतवर्षिण्या स्वनाथान् समजीवयत्''

अर्थात् योगेश्वरों के श्री ईश्वर कृष्ण ने उन सबको इस प्रकार मरा हुआ जानकर अपनी अमृत वर्षिणी आँखों से देखकर उन सबको जीवित कर दिया। क्या नाम मिला भगवान कृष्ण को यहाँ पर। यहाँ पर योगेश्वरेश्वर नाम से कहा गया है। इसी प्रकार से एक बार वृन्दावन में आग लग गई। सभी बृजवासी करुणक्रन्दन करने लगे–महाराज ! हमें बचा लो। भगवान कृष्ण ने कहा–तुम सब अपनी आँखें बन्द कर लो। बृजवासियों ने आँखें बन्द कर लीं।

तथेति मिलिताक्षेषु भगवानग्नि मुल्वणम्।
पीत्वा मुखेनतान् कृच्छ्राद् योगाधीशो व्यमोचयत्।

अर्थात् योगाधीश श्री कृष्ण ने उस अग्नि को अपने मुख से पी लिया और बृजवासियों को संकट से छुड़ा लिया। यहाँ पर भी योगाधीश सम्बोधन तो आया है किन्तु ज्ञानाधीश सम्बोधन नहीं आया। इसी प्रकार से जहाँ–जहाँ भी उनके चरित्र आते हैं सभी जगह पर योगेश्वर योगाधीश आदि शब्द ही उनके लिये प्रयुक्त हुये हैं।

जब द्रोपदी का चीर खींचा जा रहा था तब द्रोपदी ने भगवान कृष्ण को पुकारते हुये कहा–'**कृष्ण कृष्ण** महायोगिन् कृष्णगोपीजन प्रिय। हे, गोपीजन प्रिय महायोगी कृष्ण ! आप कौरवों के समुद्र में पड़ी हुई मुझे क्यों नहीं देख रहे हो। भगवान ने अर्जुन को गीता सुनाई अर्जुन ने कहा महाराज ! आप जो कुछ कह रहे थे वह बिल्कुल ठीक है किन्तु मैं आपके योगेश्वर्य को देखना चाहता हूँ। यदि आप मुझे इसका अधिकारी समझते हों तो हे योगेश्वर ! मुझे अपने अविनाशी रूप का दर्शन कराइये। ''**योगेश्वर ततो मे त्वं दर्शनयात्मानमव्ययम्**'' यहाँ पर अर्जुन ने भी योगेश्वर ही कहा, ज्ञानेश्वर नहीं।

ज्ञान और योग दो ही शब्द है। ज्ञानेश्वर लगाया जा सकता था किन्तु सारी गीता को उठा कर देखो, भागवत् को देख लो, महाभारत को देख लो भगवान् कृष्ण के लिये कहीं पर भी ज्ञानेश्वर या भक्तेश्वर का सम्बोधन नहीं हुआ। भगवान् ने जब अपना विश्वरूप दिखा दिया तो अर्जुन ने कहा–मैंने प्रसन्न होकर अपने आत्मयोग से–योग भक्ति के प्रभाव से इस परम तेजोमय रूप को तुझे दिखाया है। यहाँ पर भी भगवान् कह सकते थे–**परं रूपं दर्शितं आत्मज्ञानात्**'' किन्तु भगवान् ने आत्म ज्ञानात् न कह करके आत्म योगात् ही कहा। इस प्रकार से सर्वत्र भगवान को योगेश्वर, योगाधीश, योगेश्वरेश्वर आदि नामों से ही पुकारा है। इससे स्पष्ट है कि भगवान को योग ही प्यारा है। इसलिये भगवान ने हम सबको योगी बनने की आज्ञा दी है। अस्तु।

मेरे मन के अन्दर एक भावना बनी हुई है और वह भावना मैं तुम्हारे मन के अन्दर बैठा देना चाहता हूँ। क्यों बिठा देना चाहता हूँ ? इसलिये कि तुम इस समय उस तेज के अन्दर बैठे हो। तुम्हारे सिरों पर, चेहरों पर एक प्रकाश व्यापक हो रहा है और तुम्हें वह प्रकाश छू रहा है। उस प्रकाश के अन्दर तुम पवित्र हो रहे हो। मैं तुम्हें बताना चाहता हूँ कि तुम किसके संकल्प में बैठे हो। किसके संकल्प में तुम अपने आपको दे चुके हो। मेरा कहना यह है कि महापुरुषों का संकल्प कभी मिथ्या नहीं हुआ करता। वे योग योगेश्वर करण कारण श्री प्रभुजी, जो ज्ञान और योग के मूल कारण हैं उनके मन में यह संकल्प आना कि ये हमारे बच्चे हैं, इनका कल्याण हो। इस प्रकार उनके मन में तुम सब जम चुके हो और उस जम चुकने का कारण है कि तुम लोग प्रेम में विभोर होकर गीत गाते हो, संकीर्तन करते हो, और उनके चरणों से प्रेम करते हो, उनका आवाहन करते हो, बुलाते हो। यदि हृदय के अन्दर प्रकाश नहीं गया होता तो ये गीत और भाव नहीं निकलते। इसलिये उनके

मन के अन्दर तुम्हारा अधिष्ठान हो चुका है, उनके मन के अन्दर समा चुके हो। उनके मन के अन्दर समाना बहुत बड़ा महत्व रखता है। बस ! यही समझाने के लिये तुम्हें सब बातें कह रहा हूँ। हाँ, मैं तुम्हें बता रहा था कि भगवान् कृष्ण को योग ही प्यारा है।

रही भक्ति मार्ग की बात ! भक्ति का अर्थ है–**''ईश्वरे परानुरक्तिः भक्ति''** ईश्वर में परम अनुराग होना भक्ति है। भक्ति से परमात्मज्ञान होता है। गीता में भगवान् ने कहा है–

भक्त्या मामभिजानाति यावान् यश्चास्मि तत्वतः।
ततो मां तत्वतो ज्ञात्वा विशते तदनन्तरम्।

अर्थात् भक्ति के द्वारा मैं जितना जो भी हूँ इसको मेरा भक्त जान लिया करता है इस तरह भली प्रकार तत्व से जानने के बाद मुझ में प्रवेश करता है। भक्ति की बात पर मुझे एक घटना याद आई। मेरा एक छोटा गुरु भाई था। ऋषिकेश में श्री प्रभु जी के चरणों में रहता था। वह भगवान शंकर, भगवान विष्णु आदि के चित्रों को देखकर कहता था यह क्या भगवान हैं ? इनके साथ तो स्त्रियाँ हैं, यह कैसे योगेश्वर हैं ? इस प्रकार का मजाक किया करता था। मैं श्री वृन्दावन से बीच बीच में ऋषिकेश आता रहता था। मेरा वह गुरु भाई हम लोगों को चिढ़ाने के लिये राधा कृष्ण के चित्र को उल्टा कर दिया करता था। एक दिन सायंकाल श्री प्रभु जी अपने आसन पर विराजमान थे। लगभग ७ बजे का समय था। नरसिंह मूर्ति की हरकतों को देखकर प्रभु जी कहने लगे–नरसिंह ! बस अति हो गई **''अति सर्वत्र वर्जयेत्''** ! क्यों उल्टा कर रखा है इन स्वरूपों को ? उसने मजाक में कह दिया–इनको कब्ज हो गई है शीर्षासन कराकर कब्ज तोड़ रहा हूँ।'' श्री प्रभु जी कहने लगे–तू आदि शक्ति का अपमान करता है। राधा के नाम पर अपशब्द कहता है। नरसिंह ! होश में आ जा ! नहीं तो इसका नतीजा भोगना पड़ेगा। उसने परवाह नहीं की। **''जैसी होय होतव्यता तैसी उपजे बुद्धि''** जिस प्रकार की होनहार होनी होती है बुद्धि वैसी हो जाती है। कहने लगा–नहीं, प्रभुजी ! मैंने कुछ नहीं किया है बस कब्ज तोड़ने के लिये थोड़ा सा शीर्षासन कराया है फिर हटा दूँगा। श्री प्रभुजी के मुख से निकला। 'अच्छा ! नरसिंह यह बात है। अच्छी बात ! अब जिस राधा को उल्टा सीधा कहता है शीर्षासन कराता है, थोड़े दिन के अन्दर तू इनके लिये रोता फिरेगा। अब तुम्हें इनके लिये विलाप करना पड़ेगा।'' इसी के फलस्वरूप नरसिंह मूर्ति जी कुछ दिन बाद ही वृन्दावन चले गये। वहाँ किसी वैष्णव महात्मा से दीक्षा ले ली। यद्यपि यह काम गलत हुआ था। मैं दस बीस दिन बाद वृन्दावन गया। मुझसे उसका प्रेम था। श्री प्रभु जी ने आज्ञा दी थी कि तुम वृन्दावन में जाकर नरसिंह मूर्ति के लिये जो कुछ सोचोगे वह हो जायेगा। मैंने जो कुछ सोचा उनकी कृपा से वैसे ही हुआ। उसकी हालत क्या देखी, सखी वेश में था वह। कहने लगा मुझ पर तो श्री जी की कृपा हो गई है। यहाँ सेवा कुंज में झाडू लगाने को मिल जाये, बस बड़े भाग्य की बात है। फिर कहने लगा–कृष्ण जी तो अपना नाम योगियों में लिखाते हैं किन्तु उनका भी कभी कुछ होगा तो श्री जी की कृपा व इच्छा से होगा। बड़ा दुःख हुआ

उसकी बातों को सुनकर। 'ऐसा कह रहा है यह' श्री कृष्ण तो राधा से अभिन्न हैं। राधा के ईश्वर के लिये कह रहा है ऐसा करना पड़ेगा वैसा करना पड़ेगा। बुद्धि पर पर्दा पड़ गया है श्री कृष्ण के लिये ऐसे कह रहा है। भगवान कृष्ण किसी के भक्त नहीं हो सकते। न ही कहीं पर उनके लिये भक्तेश्वर शब्द का प्रयोग हुआ है। उन्हें तो योग शब्द प्यारा है और योगश्वर, योगाधीश आदि नामों से पुकारा जाना ही उन्हें अच्छा लगता है अस्तु।

मैं तुम्हें बता रहा था कि योग मार्ग की ओर आना और उन योगेश्वर के तेज के दायरे के अन्दर बैठना, उनके मन में अपने प्रति संकल्प बना लेना, उनके मन में यह बिठा देना कि **''हे सर्वशक्तिमान योगेश्वर हम तेरे बच्चे हैं''**, यह भाव उनके अन्दर बना देना बहुत बड़े भाग्य की बात है।,उनके संकल्प कभी परिवर्तित नहीं हुआ करते। मैं एक बात और बता दूँ तुम्हें—अरे वे तो योगेश्वर हैं। एक महात्मा जो मनसा, वाचा कर्मणा सत्य का अवलम्ब लेता है, उसके मन में भी यह संकल्प बन जाये कि मैंने अमुक के लिये अमुक कार्य करना है तो वह हो जाया करता है। मैं तुम्हें बता रहा था उन सर्वशक्तिमान के संकल्प की बात। श्री प्रभु जी नैपाल हिमालय से आये। उन्होंने संसार को इतनी बड़ी रोशनी दी जिसके अन्दर सारा संसार चल रहा है। मैं तुम्हें एक बात बताऊँ ? तुम्हें याद हो या न याद हो, कीर्तन का प्रवाह आज से लगभग ४५–५० वर्ष पहले से ही चला है। इससे पहले कीर्तन केवल मात्र बंगाली समाज में ही चलता था। मेरे बड़े गुरुभाई को श्री प्रभु जी का संकीर्तन का वरदान हुआ। वरदान होने के बाद उन्होंने लाहौर में संकीर्तन कराना आरम्भ कर दिया। उस समय वहाँ पर ३०–३५ कीर्तन मण्डलियाँ बन गईं। वह प्रवाह धीरे–धीरे सब जगह फैल गया।

'गोविन्द जय जय गोपाल जय जय'
राधा रमण हरि गोविन्द जय जय
राधेश्याम राधेश्याम, श्याम श्याम राधे राधे'

यह कीर्तन ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का बनाया हुआ है। इस कीर्तन का प्रवाह सारे भारत में फैलता चला गया। बाद में ब्रह्मचारी गोपालानन्द जी का देहावसान हो गया। उसके बाद मण्डली वालों ने कीर्तन में श्री प्रभु जी के चित्र रखने बन्द कर दिये। भगवान राम, कृष्ण तथा शिव आदि के चित्र ही रखे जाने लगे। मुझे अच्छी तरह याद है अमृतसर में एक आदमी ने आकर श्री प्रभुजी से कहा–प्रभु जी ! मण्डली वाले अब आप के चित्र नहीं रखते हैं। श्री प्रभु जी ने पूछा–किसके चित्र रखते हैं ? उसने बताया–भगवान राम के रखते हैं, श्री कृष्ण के रखते हैं, भगवान शंकर के रखते हैं। श्री प्रभु जी ने एक जवाब दिया और वह जवाब मुझे प्यारा लगता है। मैं जब उस आत्म सत्ता को देखता हूँ तब मैं यह समझता हूँ कि वे सर्वशक्तिमान ही ऐसा जवाब दे सकते हैं, संकीर्णदायरे का व्यक्ति ऐसा जवाब नहीं दे सकता। प्रभुजी ने कहा–कीर्तन में राम, कृष्ण के चित्र ही होने चाहये, हमारे नहीं। यदि कोई रखता हो तो मना कर दो कि हमारे चित्र कीर्तन में न रखें। भगवान राम,

कृष्ण आदि के ही चित्र रखें। वह व्यक्ति बहुत पीछे पड़ा कि प्रभुजी आप का चित्र क्यों नहीं रखने चाहिये। बहुत देर बाद श्री प्रभुजी ने एक जवाब दिया। प्रभुजी कहने लगे-बतायें योगी क्या करते हैं। यूं लाईट फैंकी और पीठ फेर ली। उस रोशनी के अन्दर सारा संसार चला करता है किन्तु किसी को पता नहीं चलता कि लाईट कहाँ से आ रही है। जो कुछ करना था वह कर दिया गया। थोड़े दिनों के अन्दर यह कीर्तन गली-गली और कूचे-कूचे में फैल जायेगा, देश विदेश में फैल जायेगा किन्तु किसी को पता नहीं होगा कि यह कीर्तन की लहर कहाँ से आई है न कोई हमें जानेगा, न गोपालानन्द को। जो यहाँ पर बुजुर्ग बैठे हुये हैं उनको मालूम होना चाहिये कि आज से ६०-६५ वर्ष पहले गली-गली में इस प्रकार से कीर्तन का प्रचार नहीं था मैं समझता हूँ कि सिद्धों के महासिद्ध मेरे गुरुदेव के संकल्प का फल था। इसके कारण ही आज घर-घर में गली-गली में इस संकीर्तन की ध्वनियाँ सुनाई दे रही हैं। यह कीर्तन की ध्वनियाँ हमारी हैं। उस कीर्तन को करने वाले श्री प्रभुजी का प्रकाश पाकर निहाल हो रहे हैं। मैं यह शब्द तुम्हें क्यों कह रहा हूँ ? मेरे मन के अन्दर एक लहर आई थी एक ख्याल आया था कि उस लहर के दाता योगेश्वर श्री प्रभुजी के तुम सब बालक हो। हम सब उनकी शरण में आये हुये हैं। उन सिद्धों के महासिद्ध योगेश्वर के मन में यह भावना आती है कि ये हमारे हैं। यदि यह भावना न आये तो वे तुम्हारी आँखों के सामने आकर क्यों खड़े हो जायेंगे ? क्यों तुम्हें स्वप्न में, ध्यान में दर्शन देंगे ? क्यों तुम्हारे काम करेंगे ? तुम्हें अपना समझ लिया है इसलिये ये सब करते हैं। इसलिये मैं तुम्हें चेतावनी देता हूँ कि देखो ! छूट न जाये पल्ला कहीं से। उनके चरणों का अवलम्ब छूट न जाये। यदि उनके चरणों से कोई छूटता है तो उसके लिये आगे मैं कुछ कहता नहीं। मैं समझता हूँ बड़ा जबरदस्त धोखा खाने वाला वह व्यक्ति है जो उन चरणों से किसी प्रकार पृथक हो जाये या उन चरणों की उपेक्षा कर दे। तो इसलिये अपने मन के अन्दर आनन्दकन्द श्री प्रभुजी के चरणों का चिन्तन करते हुये योग मार्ग में बढ़ो। भगवान ने गीता में आज्ञा दी है **"जिज्ञासुरपि योगस्य शब्दब्रह्मातिवर्तते"** अर्थात योग का जिज्ञासु भी कर्मकाण्ड के दायरे से आगे निकल जाता है। मनुष्य के मन में इतनी ही भावना आ जाये कि मैं योगी बनूं तो वह कर्मकाण्ड के दायरे से आगे बढ़ जाता है और यदि थोड़ा बहुत योग मार्ग में प्रवेश कर गया, अनुभूतियाँ जारी हो जायें तो वह महापुण्य भाजन बन जाता है।

मैं तुम्हें बता रहा था श्री प्रभुजी का संकल्प कभी मिथ्या होने वाला नहीं होता। **साधु वचन पल्टे नहीं, पल्ट जाये ब्रह्माण्ड**। दूसरे शब्दों में यूं कह दें **साधु संकल्प पल्टे नहीं पल्ट जाये ब्रह्माण्ड**। उनके मन में जो संकल्प आ गया वह कभी बदलेगा नहीं। वह तो अपने काम को कर देगा चाहे जैसा भी कर दें, कर देंगे। श्री प्रभुजी ने एक लीला दिखाई थी। तुमने वह लौकी वाला प्रसंग सुना होगा। यहाँ गुफा के पीछे जहाँ इस समय रसोई घर बना हुआ है। गाँव के एक ठाकुर का खेत था। एक दिन श्री प्रभुजी ने उससे

लौकी लाने को कहा। वह कहने लगा—महाराज ! इस समय खेत में लौकी नहीं है। श्री प्रभुजी उस के खेत में पहुँच गये। एक एक बेल उठाते रहे लौकी मिलती रही। मनों के हिसाब से लौकी निकल आई। यह उनके संकल्प का प्रभाव था। आज तुम उस सर्वशक्तिमान की छत्र छाया में बैठे हो, उनके चरणों का चिन्तन करने वाले बैठे हो। चलते फिरते उठते बैठते अपने गुरु मन्त्र का जाप करो। उनके मन में शुद्ध संकल्प बना लो। अपने प्यार से, अपनी श्रद्धा से, अपनी सेवा से उनके चरणों से गठबन्धन जोड़ लो, उनके मन की पक्की मुहर लगवा लो कि **"ये हमारे हैं"**। निश्चित जानो तुम मुक्तिद्वार तक पहुँच कर रहोगे, पीछे बिल्कुल नहीं रह सकते। यह बिल्कुल सीधी बात रहेगी। किन्तु दो तीन बातें छोड़ दो—ईर्ष्या, द्वेष, चुगली, निन्दा, ढिंढोरा पीटना यह छोड़ दो। यह नहीं होना चाहिये। जब तक परदोष दर्शन करने वाले रहोगे, वह दोष तुम में जमा होते चले जायेंगे और यदि तुम गुण देखने वाले बनोगे तो तुम्हारे अन्दर स्वतः गुण भरते चले जायेंगे। अरे, कोई दोषों का पुतला है तो अपने आप भोगता रहेगा तुम्हें क्या चिन्ता पड़ी है भई ? अपनी जिम्मेदारी लो दूसरों की जिम्मेवारी फिर बाद में ले लेना। उसके कर्म तो यह सर्वशक्तिमान स्वयं देख लेंगे। इसलिये तुम अपने मन को पक्का करके उनके चरणारविन्द का चिन्तन करो, उनके चरणों का ध्यान करो। आँख बन्द करके उन्हें अपने हृदय में छुपा लो। उनके संकल्प में आज जाओ कि **"ये हमारे हैं"** याद रखो, यम तुम्हारे पास फटक नहीं पायेगा। यमराज की ताकत नहीं कि तुम्हें आँख उठाकर देख ले।

तुमने "सिद्धयोग" पत्रिका में मिर्जापुर के उस बूढ़े के ध्यान—अनुभव पढ़े होंगे। वह स्वर्ग में चला गया। वहाँ देवताओं ने पूछा—तुम किस अधिकार से यहाँ आये हो ? उनसे कहा—मैं योग योगेश्वर प्रभु श्री रामलाल जी महाराज के शिष्यों में से हूँ। यमराज ने देखकर कहा—महाप्रभु रामलाल जी ने हरेक को स्वर्ग भेजने का ठेका ले लिया है अब मैं तुम्हें कैसे रोकूँ ? श्री प्रभुजी की करुणा कृपा से लोगों के बड़े—बड़े अनिष्ट व बाधायें दूर हो जाती हैं उनके संकल्प से सभीकार्य होते हैं। यदि तुम उनके बच्चे हो उनकी शरण में आये हो तो अपनी आत्म शक्ति को बढ़ा कर देख लो क्यों व्यर्थ में मेरे कान खाया करते हो। अपने मन के अन्दर ताकत बढ़ाकर देखो कि उन सर्वशक्तिमान का तेज तुम्हें निहाल करता है या नहीं, तुम्हारे अन्दर जगमगाहट होती है या नहीं इसलिये खूब मन्त्र जाप करो, घोट कर पी जाओ मन्त्र को। सोते—सोते जपो, जागते—जागते जपो, चलते, फिरते, उठते—बैठते हर समय जपते रहो। थोड़े दिन के अन्दर तुम्हारे अन्दर आत्मशक्ति बढ़ती चली जायेगी। मेरे मन में एक लहर आई थी इसलिये मैं तुम्हें कुछ चेतावनी देने के लिये बातें समझा रहा हूँ। मेरी आँखों में एक लाईट आई और मैं देखता हूँ कि वह सब के सिरों को छू रही है। और मैं अपने मन के अन्दर सोचता हूँ कि इस गुफा के चबूतरे पर बैठने वाले ! तुम निहाल हो रहे हो, तुम्हें उस विश्वात्मा का तेज छू रहा है तुम यहाँ आकर उस कृपा को पा रहे हो इसलिये यहाँ आकर राग द्वेष के झमेले को छोड़कर अपनी साधना को

बढ़ाओ, अपने तप को बढ़ाओ। यदि तुम में से कोई भाग्यवान इस प्रकार का निकल आये जो छः महीने लगातार साधना कर ले तो सारी जिन्दगी की कमाई छः महीने के अन्दर ही मिल जायेगी। तुम अपने आप को झिलमिलाते तेज के अन्दर देख लोगो इसमें कोई भी शंका की बात नहीं है। इसलिये अपने आप को योगी जानो। प्रभुजी के चरणों का अनन्य भाव से चिन्तन करो।

गुरु भक्तिं सदा कुर्यात् श्रेयसे भूयसे नरः।

अर्थात् भूरि–भूरि कल्याण चाहने वाले को सदा गुरु भक्ति करनी चाहिये। बड़ी मुश्किल से, कठिन प्रारब्ध से बड़े भारी पुण्य के फल से इस प्रकार से परिपूर्णतम गुरुदेव की प्राप्ति होती है। जैसे श्री प्रभुजी के चरणारविन्द मुझे और तुम्हें मिल गये हैं। इसलिये मेरी इन बातों को सुनकर के अपने मन को श्री प्रभुजी के चरणारविन्दों में लीन करो। उनके चरणों के चिन्तन में मन को लगाओ। तुम जिनको अपनाने के लिये आये, हृदय की कोठरी जिनके लिये खोल दी उनकी प्राप्ति के लिये पराई चर्चा में मत पड़ो। सत्य बोलने की आदत डालो। अपने अभ्यास को बनाये रखो, अपने आपको झुकाये रखो। मौत का सदा ध्यान रखो। कलिकाल का समय ध्यान रखो। इसमें नाना प्रकार के पाप होते रहते हैं। इस बात को याद रखो उन सर्वशक्तिमान का हाथ तुम्हारे सिरों पर है। इतनी बात का तजुर्बा मेरे ख्याल में मेरे सत्संगी बच्चे को होगा कि श्री प्रभुजी परिपूर्णतम हैं। उनसे बढ़कर परिपूर्ण गुरु मिलना इस कलिकाल में बड़ी मुश्किल और असंभव सी बात है। इसलिये देखो ! काल का कुछ पता नहीं चलता। रोज–रोज आदमी मर रहे हैं। कोई दुर्घटना से मर रहा है कोई किसी और बहाने से मर रहा है। क्षण में ही मनुष्य बोलते–बोलते मर जाता है। इस कठिन व भयानक समय में सिद्धों के महासिद्ध श्री प्रभुजी का मिलना अनुष्ठानों की प्रेरणा बनाना, पवित्र योग मार्ग की प्राप्ति इन सब संयोगों को पाकर ईर्ष्या द्वेष को छोड़कर योगाभ्यास में लग जाओ। कोई ईर्ष्या द्वेष की बात करता है तो उसके सामने हाथ जोड़ लो। कह दो–कृपा करो मुझ पर, तुम अपनी हालत पर रहो, मुझे अपनी हालत पर छोड़ दो।

इधर–उधर की व्यर्थ की बातों में समय न बिताकर भगवान के गुणानुवाद में अपने को लगाओ। यह कल्याण का कारण बन जायेगा। ईर्ष्या द्वेष की बातें साधक को साधत्व से गिराने वाली होती हैं। इसलिये साधक को मौन रहना चाहिये। साधक को संयमी रहना चाहिये। पराई चर्चा में नहीं पड़ना चाहिये। साधक को विशेष बात नहीं करनी चाहिये। साधक को अपनी नियमानुवर्तिता का पक्का होना चाहिये। जो इन बातों का पालन करते हैं परमात्मा की कृपा से श्री प्रभुजी अपने बालकों को हमेशा देखते रहते हैं। जो इस प्रकार से बढ़ने का प्रयत्न करते हैं उनकी वे सर्वशक्तिमान अवश्य मदद करते हैं। मेरी इन बातों को सुनकर अपने आपको उस पवित्र मार्ग पर चलाने का प्रयत्न करो। जो प्रयत्नशील रहेंगे निश्चित जानो प्रभु की कृपा होगी और उनका भला व कल्याण होगा।

सबको बार–बार आशीर्वाद।

❊❊❊

● सम्पादकीय

गुरु पूर्णिमा

आचार्य (डा०) दासलाल ब्रह्मचारी

प्रतिवर्ष आषाढ़ की पूर्णमासी को गुरु पूर्णिमा या व्यास पूजा के रूप में मनाया जाता है। गुरु शब्द पूर्णता अथवा विशालता का भी द्योतक है। इसदिन गुरुदेव की विशेष रूप से पूजा की जाती है। जहाँ पर गुरु को साक्षात् ब्रह्म के रूप में माना जाता है वहाँ पर तो गुरुदेव क्षण–क्षण व नित्य स्मरणीय होते हैं। 'गुरु' शब्द कई अर्थों का द्योतक है। जो शिष्य के अज्ञानान्धकार को ग्रस लेते हैं वे गुरु हैं। 'गु' शब्द अंधकार का वाचक है तथा 'रु' प्रकाश का। जो अन्धकार को नष्ट करके शिष्य के अन्तःकरण को प्रकाशित कर दे वही गुरु हैं। पतञ्जलि जी महाराज ने योग दर्शन में काल से अतीत ब्रह्मा विष्णु आदि के भी उपदेष्टा को गुरु शब्द से 'अभिहित किया है। गुरुकाल से अविच्छिन्न होने के कारण देश काल तथा वस्तु से अविच्छिन्न है। इस तत्व को ही 'ब्रह्म तत्व' के रूप में शास्त्रों में माना गया है। वही ईश्वर सभी का गुरु है। गुरुगीता में भगवान् सदाशिव ने भगवती पार्वती को गुरुतत्त्व का उपदेश देते हुये कहा है– **'अज्ञान ग्रासकं ब्रह्म गुरुरेव न संशयः'** शिष्य के चित्त के अज्ञान को नष्ट कर देने वाले ही गुरु व ब्रह्म कहे जाते हैं।

गुरुगीता में गुरुदेव के स्वरूप का नित्य चिन्तन करने की बात कही गयी है–**गुरुमूर्तिम् स्मरेत नित्यम् गुरोरन्यम् न भावयेत्**' अर्थात् गुरुदेव की मूर्ति के स्वरूप का नित्य चिन्तन करना चाहिये। गुरुदेव के अतिरिक्त किसी और का चिन्तन भी नहीं करना चाहिये। सद्गुरु वे सत्ता है जो अखण्ड मण्डलाकार रूप में चराचर में व्याप्त परम तत्व को दिखा देते हैं। गुरुदेव ही शिष्य के मन, बुद्धि को प्रकाशित करने वाले हैं। सद्गुरु और शिष्य का संस्कार बन्धन बहुत ही प्रगाढ़ होता है। लोक में मनुष्य के जीवन में अनेक विधाओं को पढ़ाने वाले गुरु होते हैं जिनकी उच्च शिक्षा एवं व्यक्तित्व निर्माण में ऊँची भूमिका होती है। शिष्य कहीं से कोई विद्या सीखता है तो उसे जीवन पर्यन्त गुरु के प्रति श्रद्धावनत होना चाहिये। अपने शिक्षा गुरु श्रद्धेय आचार्य विश्वबन्धु जी के प्रति गुरुदेव भगवान् की अपार श्रद्धा देखने में आती है। वे कहा करते कि 'आचार्य जी के व्यक्तित्व एवं शिक्षाओं की उनके जीवन में अमिट छाप है।' गुरुदेव आजीवन अपने शिक्षा गुरु के संस्थान पर जाते थे और गुरुदक्षिणा के रूप में द्रव्य भेंट किया करते थे। सर्वसमर्थ योगेश्वर होते हुये भी इस नियम को अन्तिम समय तक निभाया। यद्यपि परमात्म सत्ता से ही सभी जीवों का भला होता रहता है किन्तु समर्थ सिद्ध गुरु के शिष्य के लिये गुरुदेव के परम कल्याण का अमोघ

संकल्प बना रहता है। कालान्तर में संकल्प फलवती होता ही है। उनके संकल्प से ही शिष्य मुक्ति भाजन बन जाता है।

उपनिषदों में गुरुभक्ति करने का उपदेश है–

गुरुभक्तिम् सदा कुर्यात् श्रेयसे भूयसे नरः।

यदि कोई अपना परम कल्याण चाहता हो तो उसे गुरुभक्ति करनी चाहिये। वेदों में आगे भी कहा है–

गुरुरेव परं ब्रह्म गुरुरेव परागतिः, गुरुरेव पराविद्या, गुरुरेव परायणम्, गुरुरेव पराकाष्ठा, गुरुरेव परम्धनम् अर्थात् गुरुदेव ही परब्रह्म हैं, वे ही परागति हैं, वे ही पराविद्या हैं, वे ही शिष्य के परम आश्रय स्थल हैं। वे ही पराकाष्ठा और शिष्य के परमधन हैं।" गुरुदेव ही शिष्य के त्रिविध ताप का शमन करते हैं।

श्रुतियों में गुरुदेव, इष्टदेव तथा आत्मा को एक ही तत्व के तीन नामों के रूप में माना गया है। गुरु ही शिष्य को पिता का प्यार देते हैं, माँ का वात्सल्य देते हैं, वे ही बन्धु तथा सखा हैं। वे ही शिष्य के विद्या, धन एवं सब कुछ हैं। जो गुरुदेव की ब्रह्मभाव से उपासना करते हैं वे ही गुरुकृपा को पाकर नित्य आनन्दित रहा करते हैं–गुरु स्वयं पूर्णपुरुष होते हैं शिष्य को भी अपने समान बनाते हैं। इसलिये कहा जाता है कि पारसमणि लोहा को सोना बना देता है किन्तु पारस नहीं बनाता जबकि गुरु शिष्य को अपने समान बना देते हैं। गुरुदेव के विषय में सन्त ज्ञानेश्वर के परम उदात्त भावों को निम्न पंक्तियों में देखें–जिनका स्मरण करते ही शिष्य में समस्त विद्यायें आ जाती हैं, उन श्री गुरुचरणों की मैं वन्दना करता हूँ। जिनका स्मरण करते ही काव्य शक्ति आ जाती है। सारी साधनायें सफलता की चरम बिन्दु पर सहज ही जा पहुँचती हैं। सब प्रकार के रसाल बक्तृत्व जिह्वा के अग्रभाग पर आ उपस्थित होती है, जिनके स्मरण मात्र से काव्य की मधुरता के आगे अमृत भी फीका पड़ जाता है। रहस्यमय ज्ञान के परदे खुल जाते हैं, सम्पूर्ण आत्मबोध जिनके संकेत मात्र से प्राप्त हो जाता है उन अपने श्रद्धेय गुरुदेव की मैं सादर वन्दना करता हूँ।

जगत में मुझे कोई ऐसा उपमान नहीं मिल पाया जिसे मैं अपने गुरुदेव की उपमा में रख सकूँ। सचमुच वे अनुपम हैं। समस्त संसार का मन्थन करने वाला जो काम विकार है उस काम विकार को नष्ट करने वाले कामारि शिव मेरे गुरुदेव हैं। जिस पर भी गुरुदेव की कृपादृष्टि हो जाती है, जिसको भी उनका कोमल कर स्पर्श कर लेता है उसका तत्काल कल्याण हो जाता है। जिनका चारु चरित्र आकाश से भी अधिक स्वच्छ, निर्लेप है, सागर से भी गंभीर और मार्यादाशील है, कैसे, कहाँ तक मैं उनके असंख्य गुणों का वर्णन करूँ। हमारे सन्तों व योगियों ने गुरुदेव की महिमा में बहुत कुछ कहा है। महात्मा

कबीर कहते हैं 'सद्गुरु महिमा अनन्त है अनन्त कियो उपकार' अर्थात् सद्गुरु की महिमा का कोई अन्त नहीं है उनके उपकार का भी अन्त नहीं है।

गुरु नानक देव कहते हैं–'**सद्गुरु नाम जहाज है चढ़े सो उतरे पार**'। सद्गुरु के नाम एवं सुमिरन रूपी जहाज पर चढ़कर शिष्य भवसागर से पार हो जाता है। सन्त तुलसीदास कहते हैं–'सद्गुरु जीवन नौका के खेवनहार है, नौका चलाने वाले हैं। इनकी कृपा से ही कोई भवसागर पार हो सकता है। गुरुगीता में भगवान सदाशिव भगवती पार्वती के उपदेश करते हुये एक श्लोक के द्वारा गुरुदेव के स्वरूप एवं कार्य को बतलाते हुये कहते है–गुरुदेव का सच्चिदानन्द रूप है। वे व्यापक तत्व हैं, परमात्मा है वे ही शिष्य के अविद्या ग्रन्थि का भेदन करने वाले हैं उन गुरुदेव का सदा नमस्कार है।

सद्गुरु तत्व का नाम है शरीर का नहीं। तत्व सत्य होता है उसका कभी नाश नहीं होता। स्थूल शरीर के तिरोहित हो जाने पर भी गुरु सत्ता काम करती रहती है। उस परम सद्गुरु सत्ता को इस पावन पर्व पर बारम्बार प्रणाम है।

❊❊❊

चित्त ही संसार है

चित्तमेव हि संसारस्तत्प्रयत्नेन शोधयेत्।
यच्चित्तस्तन्मयो भवति गुह्यमेतत् सनातनम्।।
चित्तस्य हि प्रसादेन हन्ति कर्म शुभाशुभम्।
प्रसन्नात्माऽऽत्मनि स्थित्वा सुखमक्षयमश्नुते।।
समासक्तं यदा चित्तं जन्तोर्विषयगोचरम्।
यद्येवं ब्रह्मणि स्यात्तत्को न मुच्येत बन्धनात्।।

(मैत्रेयी० ५-७)

चित्त ही संसार है; अतः प्रयत्नपूर्वक उसको शुद्ध करना चाहिये। जिसका जैसा चित्त होता है, वैसा ही वह बन जाता है। यह सनातन रहस्य है। चित्त के प्रशान्त हो जाने पर शुभाशुभ कर्म नष्ट हो जाते हैं; और प्रशान्त मन वाला पुरुष जब आत्मा में स्थिति लाभ करता है, तब उसे अक्षय आनन्द की प्राप्ति होती है। मनुष्य का चित्त जितना इन्द्रियों के विषयों में समासक्त होता है, उतना यदि परब्रह्म में हो जाय तो बन्धन से कौन न मुक्त हो जाये।

दैवी सम्पदा का अधिकारी कौन ?

—वेदव्रत द्विवेदी, उमापुर

भगवान पतञ्जलि ने योग के साथ अनुशासन–पद का प्रयोग करके योग शिक्षा की अनादिता सूचित की है। अथ शब्द से उसके आरम्भ करने की प्रतिज्ञा करके योग साधना की कर्तव्यता सूचित की है।

''अथ योगानुशासनम्''।। १।।

इसका मतलब हुआ कि योग का पहला सूत्र अथवा पाठ अनुशासन में रहना। अब दूसरे सूत्र की बात आती है– वह है

योगचित्तवृत्ति निरोधः।। २।।

भगवान का योगदर्शन जो समाधि पाद के अन्तर्गत संग्रहीत है। इस ग्रन्थ में प्रधानता से चित्त की वृत्तियों के निरोध को ही "योग" नाम से कहा गया है।

सद्‌गुरु की कृपा का अक्षय भंडार सद्‌गुरु की सेवा में सन्निहित है जरूरत इस बात की है। जब तक विषयी अर्थात् विषय के भोगों में हम जीव भाव से रहते हैं, और सांसारिकता के रसिक मिजाज को भोगते हैं, तब तक मुझे अपने ही बारे में कुछ पता ही नहीं चल पाता। जब बहिर्मुखी मन को अन्तरमुखी आत्मा को परमात्मा से सीधा जुड़ाव करने की क्रियात्मक बोध करके अपनी बुद्धि चित्त, अहंकार आपा को अपने इष्ट देव श्री सद्‌गुरु देव भगवान के चरणों में सार भ्रमजाल "श्रद्धा सुमन" को अर्पित करते हैं तभी प्रारम्भ होती है, दैवी सम्पदा, इसके पहले तो हम आसुरी सम्पदा के ही अधिकारी होते हैं।

दैवी सम्पदा के अधिकारी बनना, एक साधक के लिये उतना ही आवश्यक है जितना कि, प्यासे व्यक्ति को जल की आवश्यकता रहती है, क्योंकि प्यास से व्याकुल व्यक्ति का सम्बन्ध उस साधारण जल से नहीं अपितु अमृत से है। सामान्यतौर पर एक शिष्य बनने के लिये एक विश्वसनीय आध्यात्मिक गुरु की शरण में जाना चाहिये। और वह गुरु सिद्ध शक्तिपात दीक्षा से लेकर केवली भाव तक का "ज्ञाता" स्वयं तारक परमब्रह्म हो, ऐसे ही सिद्ध सद्‌गुरु की खोज करनी चाहिये। अतः आध्यात्मिक गुरु के निर्देशन में निश्चित प्रणाली के अनुसार इन्द्रियों का आध्यात्मीकरण करना है। जब शिष्य विश्वसनीय आध्यात्मिक गुरु का चयन कर लेता है तो उसे विधिवत उनसे दीक्षा लेनी चाहिये। यही से आध्यात्मिक शिक्षा का शुभारम्भ होता है।

शिक्षार्थी को हर तरह से अपने आध्यात्मिक गुरु को प्रसन्न रखना चाहिये। एक विश्वसनीय गुरु ही जिसे आध्यात्म विद्या का पूर्ण ज्ञान है जिसे उन्होंने भगवद्‌गीता, वेदान्त,

श्रीमद्भागवत् उपनिषद आदि आध्यात्मिक शास्त्रों से सीखा है, जो एक सिद्ध पुरुष भी है और बचपन से लेकर आज तक सम्पूर्ण जीवन योगमय बना रखा है जिसने परात्पर प्रभु से साक्षात्कार भी कर लिया है, वही वह पारदर्शी माध्यम है जिसके द्वारा एक इच्छुक साधक शिष्य बैकुण्ठ पथ पर भेजा जाता है। आध्यात्मिक गुरु पूर्णतः परितुष्ट होना चाहिये क्योंकि उसके आशीर्वाद मात्र से ही वह इस मार्ग में अद्भुत उन्नति कर सकता है।

साधक को चाहिये अपने गुरुदेव द्वारा बताये हुए मार्ग पर अनवरत् चलते रहना। अभ्यर्थी को सदैव उन महान् सन्तों के चरणचिन्हों का अनुशीलन करना चाहिये। जिन्होंने मार्ग पर चलकर सफलता प्राप्त की है। इसी को जीवन लक्ष्य मानना चाहिये। उनकी कोरी नकल से भी कोई लाभ नहीं वरन् सुनिश्चित समय और परिस्थितिओं को देखते हुए उनका अनुशीलन करना चाहिये। साधक को साधना के साथ–साथ निरन्तर आध्यात्मिक वातावरण में रहना चाहिये।

साधक को वैरागी होना चाहिये। उसे केवल स्वामित्व हेतु जितने धन की आवश्यकता हो उतने ही धन से उसे संतुष्ट होना चाहिये। उसे आवश्यकता से अधिक धन एकत्रित करने की चेष्टा नहीं करना चाहिये। उसे गुरु, गंगा, गीता, गाय, गोदान, गया, विद्वान, ब्राह्मण और भक्त के प्रति आदर होना चाहिये। भगवद् गीता के मार्ग में ये आधारभूत चरण है। शनैः शनैः नकारात्मक स्वभाव के तथ्यों को भी अंगीकार करना चाहिए। भगवद् सेवा और संकीर्तन करने में प्रमाद नहीं होना चाहिये। उसे किसी भी प्राणी के शरीर या मन को कभी कष्ट नहीं देना चाहिये। उसे स्त्री पुरुष के संसर्ग से सम्बन्धित कथाओं में भी नहीं उलझना चाहिये। और न दूसरे के परिवार से सम्बन्धित चर्चा में मन से वचन से कर्म से भी कभी भी असत्य नहीं बोलना चाहिये।

वैदिक एवं पौराणिक कल्पवृक्ष सर्व शक्तिमान–अन्तर्यामी ईश्वर ही, सर्वोत्कृष्ट, सर्वव्यापी, अजन्मा ही सद्गुरु तत्व में ही रहता है। जिसे हम 'सच्चिदानन्द' तीन शब्दों से एवं सोपानों से अलंकृत करते हैं।

'सद्' का अर्थ है–जो सदैव से है, और सदैव रहेगा। वही पूर्ण विशुद्ध ब्रह्म ही सद्गुरु होता है। भगवान शिव, जिसे हम शक्ति के रूप में जानते हैं वह भी जगत् गुरु तीनों लोकों और चौदह भुवनों का मालिक है।

अज्ञानतावश यह जीव आत्मा, तत्व यानि गुरुतत्व की दृष्टि से रुहानी जगत में इसका प्रवेश नहीं हो पाता इसलिये हम बाहरी नजारों को ही सारी दुनियाँ मानकर अन्धे की भाँति चल रहे हैं। इसके लिये आवश्यकता है "ज्ञान चक्षु" की।

ईश्वर अंश जीव अविनाशी।
चेतन अमल सहज सुखराशी।।

जबते जीव भयो संसारी।
न छूटै गाँठि न होई सुखारी।।
(श्री रामचरित मानस)

'जीव' के कर्म क्या हर कर्म वासनायें सुख के लिये ही होती हैं। किन्तु अन्तिम कोहि दुःख के श्रेय से प्रतिफलित मिलती है। संसार में रहते हुए सांसारिकता में न पड़ना ही दैवी शक्तियों का आश्रय, सद्गुरु की कृपा, ध्यान अमूल्य निधि प्राप्त हो जाया करता है। इसका प्रमुख कारण वासनाओं का बीज अंकुरित करना होता है।

दैवी सम्पदा युक्त पुरुष के लक्षण क्या हैं ? भगवान योग योगेश्वर श्रीकृष्ण भगवान परात्पर सर्व शक्तिमान अजन्मा एवं मेरे संकल्प द्वारा उत्पन्न होने से सम्पूर्ण भूत मुझ में स्थित हैं।

मोघाशा मोघकर्माणो मोघज्ञाना विचेतसः।
राक्षसीमासुरीं चैव प्रकृतिं मोहिनीं श्रिताः।।
(श्री मद्भगवद गीता अ. (६)-श्लोक-१२)

वे व्यर्थ आशा, व्यर्थ कर्म और व्यर्थ ज्ञान वाले विक्षिप्त चित्त अज्ञानी जन राक्षसी, आसुरी और मोहिनी प्रकृति को ही धारण किये रहते हैं।

महात्मानस्तु मां पार्थ दैवीं प्रकृतिमाश्रिताः।
भजन्त्यनन्यमनसो ज्ञात्वा भूतादिमव्ययम्।।
(६/१३)

परन्तु हे कुन्ती पुत्र ! आश्रित महात्माजन मुझको सब भूतों को सनातन कारण और नाशरहित अक्षर स्वरूप जानकर अनन्य मन से युक्त होकर निरन्तर भजते हैं।

❊❊❊

शोक संवेदना

यह सूचित करते हुये दुःख हो रहा है कि हमारे पुराने गुरुभाई श्री अर्जुन सिंह जी (कछवा मिर्जापुर) की धर्मपत्नी का २० मई को देहावसान हो गया है। आनन्दकन्द श्री प्रभु जी के चरण-कमलों का चिन्तन करते हुये उनके परम पावन नाम का उच्चारण करते हुये इस देवी ने अपना देहत्याग किया है। श्री प्रभुजी उनको अपने अभय चरण कमलों में आश्रय दें। उनके अनिल कुमार सिंह (कुँवर) आदि पुत्र व पुत्रियाँ हैं। श्री प्रभुजी दुःखी परिवार को इस दुःख को सहन करने की शक्ति दें। सिद्धयोग परिवार इस दुःखद अवसर पर हार्दिक संवेदना प्रकट करता है।

आदर्श और सर्वांगीण विकास

—राजेश कुमार सिंह, रोहुआ (बलिया)

मनुष्य के जीवन में एक आदर्श होना चाहिए। आँखों के सामने यदि एक ज्वलंत आदर्श रहता है तब व्यक्ति उस आदर्श के निर्देश के अनुसार इस पृथ्वी को, वायुमण्डल को अर्थात ब्रह्माण्ड को देखता है, विचारता है। आदर्शविहीन व्यक्ति प्रायः अधोगति को प्राप्त होते हैं। इसलिए प्रत्येक मनुष्य के जीवन में एक आदर्श अपरिहार्य है जितना शीघ्र मनुष्य ऐसे किसी आदर्श को अपनाता है, उतनी ही जल्दी उसका कल्याण होता है, क्योंकि दर्शन के अनुयायी को अपने को ठीक ढंग से चलाने के लिए बहुत सा समय हाथ आ जाता है। कम उम्र में दर्शन को अपनाने से समय तो अधिक मिलता ही है, पर दूसरी तरफ जीवन यात्रा लम्बी हो इसके विषय में कुछ कहा नहीं जा सकता, बहुत से लोग कम उम्र में ही मर जाते हैं। इसलिये जितनी कम उम्र में ऐसे एक आदर्श को मनुष्य अपना ले उतना ही अच्छा।

यदि कोई संसारी होना चाहे या सन्यासी, दोनों यथा समय ही ग्रहण करना उचित है। बुढ़ापे में संसारी या सन्यासी बनने से क्या लाभ न घर का रह जायेगा और न घाट का। इसका मतलब उसका पीछे का जीवन अनिश्चितता में व्यतीत हुआ है। जीवन यात्रा के प्रथम चरण में ही उच्च आदर्श को अपना लेने से दर्शन ऐसा होगा जो मनुष्य को सर्वभौम दृष्टिकोण का अधिकारी बना डालेगा, जिससे मनुष्य के अंतर में सार्वभौम दृष्टि जग जायेगी। इसके लिए दर्शन के किसी सीमित तथा खण्डित भाव के ऊपर निर्भर रहने से नहीं होगा। अतीत में मनुष्य को सीमित तथा खण्डित आदर्श के कारण अशेष क्लेश का सामना करना पड़ा है।

मनुष्य दृढ़ संकल्प के साथ आदर्श को देखते हुए यात्रा प्रारम्भ करे तो जीवन स्वर्ग बन जाता है। मैं जीवन में यह करूँगा, इस ढंग से करूँगा, का संकल्प लेकर एक तस्वीर खींच लेना चाहिये। जो व्यष्टि गृही है उसे गृहस्थ जीवन के आचार आचरण के सम्बन्ध में ठीक ढंग से समझ लेना चाहिए ताकि ठीक ढंग से उसका पालन हो सके। गृही को समाज सेवा में भी समय लगाना चाहिये। उसके सामने दो परिवार होते हैं—एक अपना पांच–छः सदस्यों का छोटा परिवार तथा दूसरा सम्पूर्ण मानव समाज अर्थात् बृहत्तर परिवार। अल्पायु में ही मनुष्य को समझ लेना उचित है कि वह किस ढंग से अपने कर्तव्य का पालन करेगा। वो वृहत्तर समाज के लिये घर छोड़कर सन्यासी बनेगा या अपने छोटे परिवार और बड़े परिवार के बीच एक सामंजस्य रखकर जीवन पथ पर अग्रसर होगा, ऐसा एक संकल्प लेना होगा।

सन्यासी के सामने एक ही परिवार समग्र विश्व ही उसका परिवार है; अर्थात् बृहत्तर

परिवार। इसका तात्पर्य है उसका सब कुछ ही है और कुछ भी उसका नहीं है। किन्तु गृही के सामने दोनों परिवार हैं एक छोटा तो एक बड़ा। गृही को इन दोनों की सेवा करनी पड़ती है, इसलिए गृही का रास्ता सरल नहीं है बल्कि जटिल है इसे उसे समझना होगा और इसे समझने के बाद उसे संकल्प लेना होगा कि वह किस तरह से इस दायित्व का पालन करेगा। निश्चित संकल्प को लेकर आगे बढ़ने वाले व्यक्ति का ही जीवन सर्वांग, सुन्दर हो सकता है उसके अन्दर व्यर्थता की ग्लानि जग नहीं सकती।

मनुष्य की कुल एकादश इन्द्रियां हैं, इस इन्द्रिय समूह को काम में किस तरह लगाना चाहिए उस पर भी ध्यानपूर्वक मनन करना चाहिए। कुछ करने के पहले एक बार सोचना चाहिए। देखने लायक दृश्य है तो देखें नहीं तो उधर ध्यान नहीं देना चाहिए, क्योंकि आंख से जो देखेंगे उसका प्रभाव सीधे मन पर पड़ेगा। ऐसे ही जो सुनने लायक बात न हो उसे न सुने। बात सुनने से अगर आपका मन उर्ध्वगामी होता है अर्थात पवित्र होता है तब उसे सुने। इसका तात्पर्य मन के नियंत्रण में इन्द्रियों को होना चाहिए न कि इंन्द्रियों के नियंत्रण में मन को। जीविका के लिए मनुष्य को कर्म करना पड़ता है। उपार्जन के लिए मनुष्य को ऐसा कर्म करना चाहिए जिससे किसी को क्षति न हो, जो शुद्ध हो, पवित्र हो। ऐसे बहुत से कर्म हैं जिससे प्रभूत अर्थागम हो जाता है मगर वो पाप कर्म होता है दुनिया को इससे क्षति पहुंचती है। धर्म सम्मत अर्थात् सत् उपाय से जीविका उपार्जन करने से किसी को नुकसान नहीं हो सकता।

तन-मन-आत्मा इन तीनों को लेकर मनुष्य का अस्तित्व है। दैहिक व्यायामचर्या द्वारा जिस ढंग से तन को मजबूत बनाया जाता है उसी तरह मानसिक तथा आध्यात्मिक व्यायाम के द्वारा मन और आत्मा को सुगठित बनाया जाता है। दैहिक शक्ति के द्वारा अधिक से अधिक आठ-दस व्यक्तियों के विरुद्ध लड़ाई-लड़ा जा सकता है, मगर मन की शक्ति से एक करोड़ क्या उससे भी अधिक व्यक्तियों को पराजित करके पार किया जा सकता है। मन की शक्ति तप और ध्यान के माध्यम से बढ़ाया जा सकता है; तप और ध्यान जितना अधिक करेंगे मानसिक शक्ति उतनी ही तीव्रता से बढ़ती जायेगी। उसी तरह आध्यात्मिक शक्ति अर्जन के लिए गुरु सत्ता के सामने आत्मसमर्पण करना चाहिए। आप जिस परिमाण में आत्मसमर्पण करेंगे आपकी आत्मा उतनी ही सुगठित होगी और उस अवस्था में एक करोड़ व्यक्ति क्या समस्त विश्व ब्रह्माण्ड पर आपका आधिपत्य होगा। इसलिए तन-मन-आत्मा तीनों शक्तियों को बढ़ाना नितान्त आवश्यक है। किसी कार्य को हाथ में लेने के बाद सुचारू ढंग से भली-भांति सम्पूर्ण करना चाहिए तथा करना भी होगा तो सुन्दर ढंग से कार्य का प्रारम्भ गुरु सत्ता अर्थात् आदर्श को ध्यान में रखकर गुरु मंत्र के साथ करना चाहिए। गुरु मंत्र के प्रयोग से कार्य सिद्ध होता है। तप, ध्यान और साधना से मानव शरीर आदर्श में एकीभूत हो जाता है और उसके लिए कोई भी वस्तु अलभ्य नहीं रह जाता।

✲✲✲

श्री प्रभु चरणों में समर्पित

—राजेश कुमार सिंह, बलिया

बिन देखे प्रभु आपको, कभी रह न पाया मैं;
होंठ हिले कई बार पर, कुछ कह न पाया मैं।
सोचा आप कुछ कहेंगे, पर हो न सका ऐसा,
सपनों को हकीकत में, बदल न पाया मैं;

मेरे दिल में आप सिर्फ, आप हैं योगी राज,
किसी और के लिए दिल को, धड़का न पाया मैं;
वर्षों से देख रहा हूँ, अम्बर में चाँद को,
पर अपने घर में पूर्णिमा देख न पाया मैं;

परिस्थितियां मेरे साथ में, ऐसी बनी गुरुदेव,
स्पर्श चरण कमल का कर न पाया मैं;
सिर्फ गुरु आप मेरे हैं, मैं शिष्य आपका,
क्यों विश्व रूप का अब तक, दरश न पाया मैं;

विश्वास है इक दिन राजेश, मिलेगा आप में,
ये अलग बात है कि, अभी तक मिल न पाया मैं।

संसार की आध्यात्मिक अनुभूतियाँ एक अद्भुत ग्रंथ है। वेद, पुराण, गीता, बाइबिल इत्यादि सब इसी ग्रंथ के कुछ पन्ने हैं। हमें अतीत की बातों को ग्रहण करना होगा, वर्तमान की ज्ञान ज्योति का उपयोग करना होगा, और भविष्य में होने वाली ज्ञानवर्द्धक बातों को ग्रहण करने के लिये अपने हृदय द्वारों को सदैव खुला रखना होगा।

—स्वामी विवेकानन्द

सुर भी तेरा, स्वर भी तेरा....

—जगदीश बंसल राय ''अधम'' DCM गोहाना मंडी

दो० सुर भी तेरा, स्वर भी तेरा, तेरा ही गुणगान। गुरु जी तेरा......
मैं तो धौंकनी लोहार की—सांस लेत बिन प्राण।।
गुरु चन्द्रमोहन वाले, करण तपस्या बड़ी भारी।
प्रभु राम लाल ने चिट्ठी भेजी, मानी आज्ञा हमारी।। गुरु चन्द्र०
कई दिनों से लहर उठै थी, बद्री बन में जाऊँगा
सतपथ खंड में अनुष्ठान जमा कै, परम पद पाऊँगा
भूल जाऊँ जग के झगड़े, अपना पल्ला बचाऊँगा
प्रवृत्ति मार्ग छोड़ कै—निवर्ती मार्ग अपनाऊँगा
दृढ़ निश्चय कर लिया मन में, बनूंगा कमण्डल धारी।। गुरु०
शरीर में भभूति रमा ली, लक्ष्य पै है खरा उतरना
फल फूल से क्षुधा मिटाऊँ, अन्न का है त्याग करना
तन पै मृग छाला बांधी, जटा में बट रस झरना
गर्म सर्द सब सहन करूँगा, चाहे जीना—चाहे मरना
न्यूं बोले भक्त चिरंजी लाल से, गुरु चरणों में विनय हमारी।। गुरु०
कन्धे पै कम्बल डाला, आगे कदम बढ़ाया था
देव लोक में खल बल मचगी, योगी मस्ती से चाल्या था
लीला अद्भुत लीलाधर की, ऐसा रास रचाया था
दायां कदम बाहर रखा तो, डाकिया चिट्ठी लाया था
चिट्ठी पढ़ कै वापिस हो लिए, जो आज्ञा गुरु तुम्हारी।। गुरु०
अल्मोड़ा से चिट्ठी आई, महाप्रभु का सन्देशा है
चन्द्रमोहन जो कदम बढ़ाया, उसको पीछे करना है
हम तो बैठे बस्ती में, तुझे बद्री बन क्यों जाना है
अनेक काम पड़े अधूरे, सब कुछ तुझ को करना है
गुरु आज्ञा शिरोधार कै चिट्ठी बक्से में सजा दी।। गुरु०

लीला देख प्रभु रामलाल की, गुरु जी गुमसुम होए
मृग छाला तुरन्त उतारी, और जल्दी–जल्दी केश धोए
पहले वस्त्र धारण करकै, गुरु दरबार में पेश होए
करकै प्रणाम प्रभु रामलाल को, नैनों से चरण धोए
फिर योग प्रचार में जुटेंगे गुरुजी–प्रभु रामलाल सहाई।। गुरु०

संवाई में पधार गुरु जी, सिद्ध गुफा का नाम दिया
लम्बे चौड़े भवन बना कै, ठहरने का इन्तजाम किया
जीवन तत्व करा कराकै, लाखों का उपचार किया
सिद्ध गुफा की रज चढ़ा कै, शक्ति का संचार किया
पहली दीक्षा दे लक्ष्मी नारायण को–माला लम्बी बना ली।। गुरु०

प्रभु राम लाल की जय बोल कै, कितनों को शरणा दिया
कृष्ण कान्त उमाशंकर जैसे, अनेकों को जीवन दान दिया
विधवा का पुत्र जिला कै, योग का चमत्कार किया
अशरण को भी शरण दे दे, घर–घर मंगलाचार किया
वर्णन नहीं हो सकता गुरु का–हारे योगी मुनि ब्रह्मचारी।। गुरु०

गुरु चन्द्रमोहन कोई और नहीं, जो सिद्ध गुरु हमारे हैं
जिन्हें चोरी–चोरी मक्खन खाया, वो ही नन्द दुलारे हैं
यमुना किनारे गऊ चराई, ये काले कम्बल वाले हैं
मधुवन में जो तान सुनाई, वो ही बंसी वाले हैं
अर्जुन को गीता ज्ञान दिया था–है वो ही कृष्ण मुरारी।। गुरु०

जो छम–छम छम–छम जोगी नाचै, वो ही अन्तर्यामी हैं
जहाँ डम–डम डम–डम डमरू बाजै, वो ही अलख निरन्जन हैं
चन्दा जिसके मस्तक सोहे, वो ही कमण्डल धारी हैं
जटा में जिसकें गंगा बहती, ये ही धोती कुर्ते वाले हैं
बड़े संस्कार से मिले गुरु जी, यू अधम सदा बलीहारी हैं।। गुरु०

अमृतकण

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टयिष्यन्ति मानवाः।
तदा देवमविज्ञाय दुःखस्यान्तो भविष्यति।।

—श्वेताश्वतरोपनिषद (२०)

जब मनुष्यगण आकाश को चमड़े की भाँति लपेट सकेंगे तब उन परमदेव परमात्मा को बिना जाने भी दुःख समुदाय का अन्त हो जायेगा।

✿ ✿ ✿

प्रणवो धनुः शरो ह्यात्मा ब्रह्म तल्लक्ष्यमुच्यते।
अप्रमत्तेन वेद्धव्यं शरवत्तन्मयो भवेत्।।

—मुण्डकोपनिषद २/४

यहाँ ओंकार ही धनुष है, आत्मा ही बाण है और परब्रह्म परमेश्वर ही उसका लक्ष्य कहा जाता है। वह प्रमादरहित मनुष्य द्वारा ही बींधा जाने योग्य है। अतः उसे बेधकर बाण की तरह उस लक्ष्य में तन्मय हो जाना चाहिए।

✿ ✿ ✿

मनसैवेदमाप्तव्यं नेह नानास्ति किंचन।
मृत्योः स मृत्युं गच्छति य इह नानेव पश्यति।।

शास्त्र और आचार्य के द्वारा सुसंस्कृत मन से ही ब्रह्म की प्राप्ति होती है। इस ब्रह्म में अणुमात्र भी भेद नहीं है। जो ब्रह्म में भेद या नानापन देखता है, वह बार–बार मृत्यु को प्राप्त होता है।

✿ ✿ ✿

घटावभासको भानुर्घटनाशे न नश्यति।
देहावभासकः साक्षी देहनाशे न नश्यति।।

(आत्मप्रबोध०)

जैसे घड़े का प्रकाशक सूर्य घड़े के नाश हो जाने पर नष्ट नहीं होता, वैसे ही देह का प्रकाशक साक्षी (आत्मा) देह के नाश से नाश को प्राप्त नहीं होता।

✿ ✿ ✿

गुरु स्तुति

प्रेषक—मोतीराम गर्ग, अलुपुर

विनती सुनो प्रभुजी मेरी,
हम सब आए शरण में तेरी,

तुम दीनों के दीन दयाल हो,
इस जग के आधार हो,
भक्तों के तुम प्यारे हो,
दुखियों के आप सहारे हो।।
हम मूर्ख तुम ज्ञान की ढेरी।
विनती सुनो ...

योगेश्वर सुख धाम प्रभो,
मेरी तुम्हें प्रणाम प्रभो,
इस जीवन के आधार प्रभो,
सर्व शक्तिमान प्रभो।
दर्श दिखा दो क्यों लाई देरी।
विनती सुनो ....

योग सुधा बरसाते हो,
दुखियों को गले लगाते हो,
मंद मंद मुस्काते हो,
शक्तिपात कराते हो,
हम माने सब आज्ञा तेरी।
विनती सुनो...

मोतीराम तेरा गुण गावे,
प्रभु प्रभु की रट लगावे,
गुरु चन्द्रमोहन को शीश नवावे,
ध्यान लगा कर दर्शन पावे
तुम प्रकाश मैं रात अंधेरी
विनती सुनो....

उपनिषद् गुरु-वाक्य हैं

(लेखक–श्रीदशरथ जी श्रोत्रिय)

१– हमारे यहाँ सम्पूर्ण वाङमय को साधारण रीति से तीन विभागों में बाँट दिया गया है। सम्पूर्ण वाङमय वाक्यमय है। अतः इन विभागों को भी वाक्य कहा गया है। वे तीन विभाग ये हैं–प्रभु–वाक्य, मित्र–वाक्य, कान्ता–वाक्य।

२– वेदों का तथा पाठकों का सम्बन्ध प्रभु–भृत्य का सम्बन्ध है। जिस प्रकार भृत्य का कर्तव्य प्रभु के वाक्यों का शब्दशः–अक्षरशः पालन करना है। प्रभु के वाक्य उसके लिये आदेश–मात्र हैं। उसे उनमें हेर–फेर ननु–नच करने का अधिकार नहीं। इसी तरह वेद–वाक्यों (मन्त्रों) में भी पाठकों या श्रोताओं को ननु–नच नहीं करना चाहिए। इसी कारण वेद–वाङमय 'प्रभु–वाक्य' कहा गया है। वे 'स्वतःप्रमाण' हैं।

३– पुराणों तथा स्मृतियों के साथ पाठकों का मित्र–मित्र का सम्बन्ध है। जिस प्रकार मित्र के वाक्यों (उपदेशों, परामर्शों) की सर्वथा परीक्षा करना योग्य है तथा हित–वाक्यों का अनुगमन और अहित–वाक्यों की उपेक्षा करना सर्वथा उचित है; उसी प्रकार पुराण–वाक्यों (इन्हीं में इतिहासों का भी अन्तर्भाव है) एवं स्मृति–वाक्यों की भी सुतर्कों से आलोचना करके उचितानुचित ग्राह्याग्राह्य का विवेक करना चाहिये। इस आलोचना की कसौटी वेद माने गये हैं। अतः पुराण–स्मृति–वाङमय को 'मित्र–वाक्य' कहा गया है। ये 'परतः प्रमाण' हैं।

४– वेद–स्मृति–पुराण–वाङमय के अतिरिक्त जो उपयोगी वाङमय (वाक्यसमूह) अवशिष्ट रह जाता है, उसको साहित्य कहा जाता है। साहित्य का तथा पाठकों का परस्पर सम्बन्ध कान्ता–कान्त–सम्बन्ध रहता है। साहित्य की निस्सृति हृदय–प्रधान बुद्धि से होती है। अतः साहित्यानुशीलन के समय पाठक की बुद्धि कुण्ठित सी हो जाती है। कान्ता (प्रिया–सुन्दरी) के मधुर, वक्र तथा हाव–विलसित वाक्यों से जिस प्रकार प्रेमी तत्क्षण अभिभूत हो जाता है, उसी प्रकार साहित्य का भी पाठकों पर वांछनीय मनमोहक प्रभाव अवश्यम्भावी है। इसी कारण साहित्य–वाङमय को 'कान्ता–वाक्य' कहा गया है। वहाँ प्रमाणाप्रमाण का प्रश्न ही नहीं उठता।

५–इन तीनों वाङमय–विभागों को यथावत् समझते और अनुगमन करते हुए हम संसार में सब प्रकार के अभ्युदय के भागी हो सकते हैं। अतः इन तीनों वाक्यों (विभागों) को अर्थात् सांसारिक सम्पूर्ण वाङमय को हम एक नाम 'अभ्युदय–वाक्य' भी दे सकते हैं। अभ्युदय–वाक्य (वाङमय) को ही शास्त्रों में 'अपरा विद्या' कहा गया है। इसकी उपयोगिता मायामय जगत् तक ही सीमित है। मायातीत लोक में (उस स्थिति को सुबोधता की दृष्टि से ही हमने लोक कहा है) इसकी कोई उपयोगिता नहीं। इसी को लक्ष्य करके भगवान् श्रीकृष्ण अपने अनन्य भक्त को उपदेश करते हैं–

त्रैगुण्यविषया वेदा निस्त्रैगुण्यो भवार्जुन। (गीता २/४५)

अर्थात् अर्जुन ! संसार के हेतु उपयोगी सम्पूर्ण ज्ञान (यहाँ तक कि वेद भी) माया विषयक है। तुझे तो इससे परे मायातीत अवस्था में पहुँचने के लिये मायातीत ज्ञान का उपार्जन करना चाहिये।

६– मायातीत ज्ञान के स्रोत उपनिषद् हैं। उपनिषदों को ही वेदान्त कहा गया है। वेदान्त ज्ञान से परे कोई ज्ञान नहीं तथा वेदान्त–वाङमय से परे कोई वाङमय नहीं। तो फिर इस वाङमय का भी कुछ नाम होना चाहिये। इसको हम 'गुरु–वाक्य' कह सकते हैं। यह नाम सर्वथा, उचित एवं युक्ति–संगत है। गुरु की स्थिति प्रभु से, मित्र से सर्वथा भिन्न है। एक अर्थ में गुरु प्रभु से भी बड़ा है। कबीर जी तो स्पष्ट कहते हैं–

गुरु साहब दोनों खड़े, काके लागूँ पाइ।
बलिहारी गुरुदेव की, जिन साहब दियो दिखाइ।।

७– फिर तत्वातत्वदर्शी गुरु की कृपा से ही तो हम तत्व को और अतत्व को देख सकेंगे–जान सकेंगे; अतः गुरु की कक्षा इस संसार में सबसे ऊँची है। गुरु से ही हमें 'उपनयन' द्वारा मायाविषयक (संसारोपयोगी) ज्ञान प्राप्त होता है और गुरु से ही हमें 'उपनिषद्' द्वारा मायातीत ज्ञान प्राप्त होता है। कहा भी है–'बिन गुरु होइ न ज्ञान।' उपनिषद् भी कहती है–'समित्पाणिः श्रोत्रियं ब्रह्मनिष्ठम्' इत्यादि। इसकी को लक्ष्य करके भगवान् श्रीकृष्ण भी अर्जुन को लोक–शिक्षार्थ उपदेश करते हैं–

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्वदर्शिनः।। *(गीता ४/३४)*

'अर्जुन ! तू उस तत्वज्ञान को तत्वदर्शी ज्ञानी गुरुओं के समीप जाकर प्रणामपूर्वक युक्त प्रश्न द्वारा तथा उनकी सेवा करते हुए प्राप्त कर।' इस प्रकार वे अवश्य तुझे तत्वज्ञान का उपदेश करेंगे। वस्तुतः गुरु–कृपा से सब कुछ सुलभ है। प्रभु परमेश्वर की कृपा का आधार भी गुरु–कृपा ही है। बिना गुरु की कृपा के परम प्रभु की कृपा नहीं होती, और बिना प्रभु की कृपा तत्व ज्ञान नहीं मिलता। उपनिषद् का स्पष्ट प्रवचन है–

यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष
आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्।। *(कठ० १/२/२३)*

अर्थात् यह परमात्मा जिसके ऊपर कृपा करता है, वही इसे प्राप्त करता है। उसी के लिये यह अपने यथार्थस्वरूप को प्रकाशित कर देता है।

८– इस प्रकार हमने देखा कि गुरु की महिमा अनन्त है। उपनिषद्–वाङमय अनेक तत्वदर्शी गुरुओं के वाक्य ही तो हैं जो कि भिन्न–भिन्न कालों में भिन्न–भिन्न रीतियों से उसी एक तत्वज्ञान का उपदेश कर रहे हैं। हमें गुरुपदेश के समान श्रद्धापूर्वक औपनिषदिक वाक्यों का अनुशीलन करना चाहिये। इतस्ततः उठी हुई शंकाओं के उत्तर भी श्रद्धापूर्वक उन्हीं में इतस्ततः खोजने चाहिये। अथवा किसी ज्ञानी गुरु से उन शंकाओं का निवारण करना चाहिये। यदि श्रद्धा है तो अवश्य ही शंकाओं का समाधान होता जायेगा–यह मेरा

(शेष पृष्ठ २८ पर)

संजीवनी पेय

(प्रेषक-श्रीविट्ठलदास जी तोष्णीवाल)

प्रकृति के नियमानुसार बुढ़ापा आना तो निश्चित है, पर उचित आहार-विहार और स्वास्थ्यरक्षक नियमों का पालन करके इसे यथासम्भव दूर रखा जा सकता है। इस दिशा में एक सफल सिद्ध अनुभूत प्रयोग यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है-

शरीरशास्त्री वैज्ञानिकों का मानना है कि जब तक शरीर के कोषाणुओं (Cells) का पुनर्निर्माण ठीक-ठाक होता रहेगा, तब तक बुढ़ापा दूर रहेगा और शरीर युवा बना रहेगा। जब इस प्रक्रिया में विघ्न पड़ता है और कोषाणुओं के पुनर्निर्माण की गति मन्द होने लगती है, तब शरीर बूढ़ा होने लगता है। इस वैज्ञानिक विश्लेषण से एक निष्कर्ष यह निकला कि यदि विटामिन 'ई', विटामिन 'सी' और 'कोलीन'-ये तीन तत्व पर्याप्त मात्रा में प्रतिदिन शरीर को आहार के माध्यम से मिलते रहें तो शरीर के कोषाणुओं का पुनर्निर्माण बदस्तूर ठीक से होता रहेगा और जब तक यह प्रक्रिया ठीक-ठाक चलती रहेगी, तब तक बुढ़ापा दूर रहेगा। बुढ़ापा आयेगा जरूर, पर देर से आयेगा।

इस निष्कर्ष पर विचार करके पूना के श्रीश्रीधर अमृत भालेराव ने यह निश्चय किया कि इन तीनों तत्वों को दवाओं के माध्यम से प्राप्त करने की अपेक्षा प्राकृतिक ढंग से, आहार द्वारा प्राप्त करना अधिक उत्तम और गुणकारी रहेगा। लिहाजा काफी खोजबीन और परिश्रम करके वे इस नतीजे पर पहुँचे कि विटामिन 'ई' अंकुरित गेहूँ से, विटामिन 'सी' नीबू, शहद और आँवले से एवं 'कोलीन' मेथी दाने से प्राप्त किया जा सकता है। इन तीनों पदार्थों का सेवन करने के लिये उन्होंने यह फार्मूला बनाया-

४० ग्राम यानी ४ चम्मच (बड़े) गेहूँ और १० ग्राम मेथीदाना-दोनों को ४-५ बार साफ पानी से अच्छी तरह धो लें, ताकि इन पर यदि कीटनाशक दवाओं के छिड़काव का प्रभाव हो तो दूर हो जाये। धोने के बाद आधा गिलास पानी में डालकर चौबीस घंटे तक रखें। चौबीस घंटे बाद पानी से निकालकर एक गीले तथा मोटे कपड़े में रखकर बाँध दें और चौबीस घंटे तक हवा में लटकाकर रखें। गिलास का पानी फेंके नहीं, इस पानी में आधा नीबू निचोड़कर दो ग्राम सोंठ का चूर्ण डाल दें। इसमें २ चम्मच शहद घोलकर सुबह खाली पेट पी लें। यह पेय बहुत शक्तिवर्धक, पाचक और स्फूर्तिदायक है, इसीलिये इसका नाम श्री भालेराव ने 'संजीवनी पेय' रखा है। चौबीस घंटे पूरे होने पर हवा में लटके कपड़े को उतारकर खोलें और गेहूँ तथा मेथीदाना एक प्लेट में रखकर इस पर पिसी काली मिर्च और सेंधा नमक बुरक दें। गेहूँ और मेथीदाना अंकुरित हो चुका होगा। इसे खूब चबा-चबाकर प्रातः खायें। यदि इसे मीठा करना चाहें तो काली मिर्च और नमक न

डालकर गुड़ मसलकर डाल दें, शक्कर न डालें। यह मात्रा एक व्यक्ति के लिये है।

इस फार्मूले का सेवन करने से ये तीनों तत्व तो शरीर को प्राप्त होते ही हैं, साथ ही एनजाइम्स, लाइसिन, आइसोल्यूसिन, मेथोनाइन आदि स्वास्थ्यवर्धक पौष्टिक तत्व भी प्राप्त होते हैं। यह फार्मूला सस्ता भी है और बनाने में सरल भी, इसमें गजब की शक्ति है, यह स्फूर्ति और पुष्टि देने वाला है।

इस प्रयोग को प्रौढ़ ही नहीं वृद्ध स्त्री–पुरुष भी कर सकते हैं। यदि दाँत न हों या कमजोर हों तो वे अंकुरित अन्न चबा नहीं सकते, ऐसी स्थित में निम्नलिखित फार्मूले का सेवन करना चाहिए–

प्रातःकाल एक कटोरी गेहूँ और तीन चम्मच मेथीदाना अच्छी तरह धो–साफकर चार कप पानी में डालकर चौबीस घंटे रखें। दूसरे दिन सुबह इसका एक कप पानी लेकर नींबू तथा शहद डालकर पी लें। शेष तीन कप पानी निकालकर फ्रिज में रख दें। यदि फ्रिज न हो तो पानी गिलास में डालकर गिलास पर गीला कपड़ा लपेट दें और गिलास ठंडे पानी में रख दें और ढक दें, ताकि पानी शाम तक खराब न हो। इस पानी को शाम तक एक–एक कप पीकर समाप्त कर दें। गेहूँ और मेथीदाने को फेंके नहीं, बल्कि फिर से ४ कप पानी में डालकर रख दें। दूसरे दिन सुबह १ कप पानी और शेष पानी दिनभर में पी लें। अब नया गेहूँ तथा मेथीदाना लें और सुबह पानी में डालकर रख दें। दो दिन तक भिगोये हुए गेहूँ और मेथीदाने को सुखा लें और पिसाने के रखे गये गेहूँ में मिला दें। इस तरह बिना दाँत के भी इस नुस्खे को सेवन कर लाभ उठा सकते हैं।

✲✲✲

(पृष्ठ २६ का शेष)

दृढ़ विश्वास है। भगवान् श्री कृष्णजी के द्वारा कितना दृढ़ आश्वासन दिया गया है–

श्रद्धावांल्लभते ज्ञानं तत्परः संयतेन्द्रियः।
ज्ञानं लब्ध्वा परां शान्तिमचिरेणाधिगच्छति।। *(गीता ४/३६)*

ज्ञान–परायण, जितेन्द्रिय पुरुष, यदि श्रद्धावान् है, तो अवश्य तत्वज्ञान को प्राप्त करता है। ज्ञान को प्राप्त करके वह शीघ्र ही परम शान्ति को भी पाता है।

६– सारांश यह है कि उपनिषद्–वाङ्मय से पाठकों का सम्बन्ध गुरु–शिष्य–सम्बन्ध होना चाहिये। शंकाएँ उठें, कोई चिन्ता नहीं ! धैर्यपूर्वक श्रद्धा–समन्वित होकर उनका समाधान प्राप्त करने की उत्कण्ठा रखें, समाधान अवश्य प्राप्त होगा–शीघ्र ही प्राप्त होगा। श्रद्धा की महिमा अपार है। अतः उपनिषद् (वेदान्त) के वाक्य साक्षात् गुरुवाक्य हैं। इसी को निःश्रेयस–वाक्य कह सकते हैं। यही परा विद्या है। यह आत्मानुभव प्रमाण है। इसको जानकर फिर कुछ जानना शेष नहीं रहता। यही जानना परम–प्रयोजनरूप मोक्ष का साधन है।

✲✲✲

धार्मिक व्रतों से आरोग्य की प्राप्ति

—डॉ० केशव जी कान्हेरे

यदि आज हम भारतीय समाज की ओर दृष्टि डालें तो एक बात स्पष्ट—रूप से दिखायी देती है कि हमारा समाज पाश्चात्य संस्कृति से इतना प्रभावित हो गया है—इतना ग्रस्त हो गया है कि वह अपनी स्वयं की पहचान ही भूल गया है। वह अपने धार्मिक व्रतों को हेय दृष्टि से निहारता है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे लोगों को इन्हें आचरण में लाने की सलाह देने का प्रयास करता है तो ये उलटा प्रश्न करते हैं, कहते हैं कि 'धार्मिक व्रतों के पीछे कोई वैज्ञानिक आधार या सिद्धान्त है क्या ? इनके पालन से कोई लाभ है क्या ?' ऐसे न जाने कितने प्रश्नों की बौछार करके ये स्वयं तो भ्रमित रहते ही हैं, दुर्बल आस्था वालों को डिगा भी देते हैं।

आजकल की छोटी—छोटी बस्तियों, कस्बों, गाँवों, शहरों और बड़े—बड़े नगरों में निवास करने वालों की ओर निगाह डालें तो परिणाम अपने—आप सामने आता है। जरा सी छींक आने, थोड़ा सा ज्वर होने तथा सर्दी—खाँसी से पीड़ित होने पर लोग डॉक्टर की शरण में जाते हैं। तुरंत मूत्र तथा रक्त आदि की जाँच कराने की सलाह मिलती है और रिपोर्ट देखकर चिकित्सक इलाज करते हैं। बड़े—बड़े शहरों—नगरों में नर्सिंग होम और विशालकाय हॉस्पिटलों की श्रृंखलाएँ फैल रही हैं। आज के युग में कैंसर, ब्लडप्रेशर, मधुमेह, गठिया आदि रोगों से अधिकांश व्यक्ति पीड़ित हैं। कुछ रोग तो ऐसे हैं जो धन के साथ—साथ शरीर का भी नाश कर डालते हैं।

सौ—दो—सौ वर्षों का इतिहास ही सिंहावलोकन करें तो आज की तुलना में तत्कालीन भारतीय समाज अधिक स्वस्थ था, नीरोग था। आज के जैसे भयंकर रोग कोसों दूर थे। सामान्य रोगों का आक्रमण नहीं होता था ऐसी बात नहीं, परंतु वे लोग धर्मशास्त्र के अनुसार आचरण करके स्वस्थ तथा नीरोग रहने का प्रयास अवश्य करते थे और उन्हें सफलता भी मिलती थी।

हमारे ऋषि—मुनियों ने 'मानव किस प्रकार स्वस्थ जीवन व्यतीत करे', इसकी खोज करके वैज्ञानिक एवं आयुर्वेद के आधार पर 'धार्मिक व्रतों का अनुपालन' करने का उपाय प्रस्तुत किया। इन व्रतों के पालन से अनेक सामान्य रोगों से मानव मुक्ति प्राप्त करके स्वस्थ जीवन का अनुभव करते—करते मानसिक तनाव से छुटकारा पाकर भगवत्प्राप्ति का सहज—सुलभ साधन भी प्राप्त कर सकता है। ऐसा विश्वास व्यक्त किया गया है।

भारत वर्ष में नव—वर्षारम्भ से अर्थात् चैत्र शुक्ल प्रतिपदा से संवत्सरपर्यन्त सभी तिथि में व्रतों का विधान है। मासव्रत, वारव्रत, तिथिव्रत, नक्षत्रव्रत आदि तो प्रसिद्ध ही हैं। सभी

व्रत करने सम्भव तो नहीं है तथापित प्रत्येक मास में कम-से-कम एक या दो व्रतों का पालन आवश्य करना चाहिए।

चैत्र शुक्ल प्रतिपदा अर्थात् नववर्षारम्भ को मुख-मार्जन स्नानादि से निवृत्त होने के उपरान्त सर्वप्रथम कड़वे नीम के पत्तों का सेवन करने का विधान है। प्रतिदिन प्रातःकाल कड़वे नीम के पत्तों का सेवन करने से रक्त शुद्ध होकर अनेक चर्म-रोगों से मुक्ति मिलती है।

इसी दिन से श्रीरामनवमी तक चैत्र नवरात्र-उत्सव का शुभारम्भ होता है। अनेक स्त्री-पुरुष इसमें उपवास रखकर भगवान् श्रीराम और भवानी माता की उपासना करके दीर्घ शान्ति और सुख प्राप्त करने की कामना करते हैं।

वैशाख मास के शुक्ल पक्ष की तृतीया तिथि में 'अक्षय-तृतीया' एक अत्यन्त शुभ मुहूर्त है। इस पवित्र तिथि को उपवासपूर्वक जल से भरा हुआ मृत्तिका-कुम्भ, फल-पंखा तथा दक्षिणासहित दान करने का विधान है। इसी तिथि से प्रतिदिन मिट्टी के घड़े में भरा हुआ जल पीना प्रारम्भ करना आरोग्यदायी माना जाता है। मिट्टी के सम्पर्क से जल शुद्ध होता है। पंचतत्वों में से ये दो तत्व-जल और पृथ्वी शरीर के लिये पोषक बनते हैं। सर्दी के दिनों में बना हुआ तथा अग्निसम्पर्क से पका हुआ मिट्टी का घड़ा अधिक उपयोगी माना गया है। फ्रिज में रखे हुए जल की अपेक्षा मटके का पानी अधिक लाभकारी है।

श्रीपुरुषसूक्त में एक ऋचा है-'चन्द्रमा मनसो जातः०' अर्थात् परमब्रह्म परमात्मा के मन से चन्द्रमा की उत्पत्ति हुई है। चन्द्रमा शीतल है। कहते हैं कि चन्द्र-किरणों से अमृत की वर्षा होती है। मानव की सम्पूर्ण क्रिया मन से ही होती है। चन्द्रमा और भगवान् श्रीगणेश का अद्वितीय सम्बन्ध है। इसी दृष्टि से मन की शान्ति-हेतु और बुद्धि-प्राप्ति-हेतु श्रीगणेशचतुर्थी का उपवास फलदायी होता है। प्रत्येक मास में दो चतुर्थी आती हैं। अधिकांश लोग कृष्णपक्ष की चतुर्थी का व्रत करते हैं। दिनभर उपवास रखकर शाम को भगवान् श्रीगणेश का पूजन करके चन्द्रोदय के पश्चात् चन्द्र का दर्शन कर भोजन करना उपयुक्त है। भगवान् श्रीगणेश को तिल-गुड़ का नैवेद्य या मोदक अधिक प्रिय है। चन्द्रोदय के पश्चात् भोजन करने से अन्न में उत्पन्न चन्द्रमा का अमृत एवं उसकी शीतलता मन को शान्ति प्रदान करती है।

धार्मिक व्रतों में एकादशी, प्रदोष और शिवरात्रि, श्रीकृष्णजन्माष्टमी, श्रीरामनवमी आदि का बड़ा महत्व है। वर्ष भर में चौबीस एकादशियाँ आती हैं। इनमें विष्णुशयनी, प्रबोधिनी एकादशी तथा महाशिवरात्रि-व्रत का अपने-आप में बड़ा महत्व है।

यद्यपि सालभर धार्मिक व्रतों का अपार भण्डार है तथापित चातुर्मास-व्रतों के पालन का आरोग्यप्राप्ति की दृष्टि से अनोखा एवं अद्वितीय महत्व माना गया है। यदि हम चातुर्मास में धार्मिक व्रतों का सही-सही पालन करें तो आरोग्यप्राप्ति के साथ-साथ

आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त कर सकेंगे।

चातुर्मास वात–पित्त–प्रकोपक साग–सब्जियों का त्याग करना श्रेयस्कर होता है। साथ ही एक समय हलका भोजन करना चाहिये।

एक कहावत है–**'वैद्यानां शारदी माता पिता च कुसुमाकरः।'** अर्थात् चिकित्सकों के लिये शरद–ऋतु लाभकारी है। यह एक माता की भाँति वैद्य लोगों की परवरिश करती है तो वसन्त–ऋतु एक पिता की तरह उनका पालन–पोषण करता है। दोनों ऋतुएँ अपना प्रभाव मानव के स्वास्थ्य पर डालती हैं। अधिकांश व्यक्ति इन दो ऋतुओं के आगमन के साथ–साथ ज्वर, मलेरिया, पीलिया आदि रोगों से पीड़ित होते हैं। इन रोगों से बचने का घरेलू सामान्य उपाय धार्मिक व्रतों का पालन (आचरण) कर अपने खान–पान पर ध्यान देते हुए ईश्वर की आराधना करना है, इससे शरीर नीरोग तो रहता ही है, आध्यात्मिक लाभ भी प्राप्त होता है।

वर्षा–ऋतु में अनेक सब्जियाँ सड़ती हैं, उनमें कीड़े प्रवेश करते हैं, तालाब आदि का जल दूषित हो जाता है। मच्छर, विभिन्न प्रकार के कीड़े–कीट वर्षा–ऋतु और शरद–ऋतु में पैदा होते हैं। इन कीड़ों–मकोड़ों से रोग–मुक्ति के लिये धार्मिक व्रतों का विशेष रूप से आयोजन होता है।

आरोग्य की दृष्टि से सप्ताह में कम–से–कम एक दिन उपवास करके उस दिन से सम्बन्धित देवता की आराधना–पूजा–अर्चना करना पुण्यदायक है। सोमवार भगवान् शंकर के लिये, गुरुवार भगवान् दत्तात्रेय–हेतु, शुक्रवार या मंगलवार माता भवानी के हेतु, शनिवार श्री हनुमान् एवं शनि देव की आराधना–हेतु व्रत किया जाता है। सोमवार को शाम के समय भगवान् शंकर की पूजा–अर्चना करके भोजन करना चाहिये। सामान्यतः दूध, फल, साबूदाना, सिंघाड़ा, मखाना, आदि सात्विक, सुपाच्य और हल्के पदार्थों का सेवन करना अत्यन्त लाभकारी है। सम्भव हो तो पूर्ण रूप से निराहार एवं निर्जल व्रत करना चाहिये। अधिकांश व्रतों–त्योहारों में दान करने की परम्परा है। दान का बड़ा महत्त्व है।

दान देना व्यक्ति के मानसिक विकास की दृष्टि से और सामाजिक कल्याण की दृष्टि से भी आवश्यक है। चातुर्मास के उपवास और नियम–धर्म इस दृष्टि से उपयोगी होते हैं। उपवास और नियम–धर्मों का पालन करने वाले व्यक्तियों का स्वास्थ्य तो उत्तम रहेगा ही, साथ ही उनके व्यक्तित्व का भी विकास होगा।

अतः धार्मिक व्रतों का उचित पालन (आचरण) करने से शारीरिक शुद्धि होकर आध्यात्मिक शान्ति भी प्राप्त होगी। इन व्रतों के माध्यम से हम ईश्वर की भी प्राप्ति कर सकते हैं।

❊ ❊ ❊

गीतोपनिषद्

लेखक–स्वामी श्री राजेश्वरानन्द जी

भगवान् श्रीकृष्ण ने भारत वर्ष के कुरुक्षेत्र नामक रणप्रांगण में अर्जुन को अपनी भगवाद्‌गीता सुनायी और यों अर्जुन को निमित्त बनाकर सारे संसार को यह दिव्य उपदेश प्रदान किया।

गीता मूल स्रोत महाभारत नामक महाकाव्य है, जो एक प्रकार का विश्वकोश है।

गीता महाभारत की मुकुट–मणि है। गीता विश्व संस्कृति की कुंजी है, और गीता के प्रकाशक स्वयं भगवान श्रीकृष्ण है। यह समूची मानव–जाति का धर्मग्रन्थ है। यह एक उपनिषद है; ज्ञान का उज्जवल प्रदीप है। यही ब्रह्मविद्या है, योगशास्त्र है एवं आध्यात्मिक जीवन का दिव्य संदेश है। यह श्रीकृष्ण और अर्जुन (नारायण और नर) का संवाद है। गीता मनुष्य को भगवान् का साक्षात्कार कराती है तथा जीवन में सरसता एवं सरलता प्रवाहित करती है। अर्जुन के व्यष्टि चैतन्य का परिच्छिन्न भवन तोड़ देने पर स्वयं श्रीकृष्ण ही सामने उपस्थित हो जाते हैं। समस्त जीवात्माओं के सामान्य केन्द्र भगवान् श्रीकृष्ण ही हैं। श्रीकृष्ण पृथिवी के लिये स्वर्ग का द्वार खोल देते हैं और बिना जाति, वर्ण, सम्प्रदाय, देश या स्त्री–पुरुष के भेद के जीवमात्र को अपने राज्य में प्रवेश करने की अनुमति प्रदान करते है। गीता की सर्वतोमुखी शिक्षा, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र से लोगों को उन्नति की ओर ले जाने वाली ज्योति है। श्रीकृष्ण जगद्‌गुरु हैं। वे विश्वात्मा हैं, दिव्य प्रेरणा तथा आध्यात्मिक प्रकाश के केन्द्र हैं।

यद्यपि गीता ऊपर से जगत्कल्याण की भावना को लेकर लोक संग्रह का निष्काम सेवा के सिद्धान्त के रूप में उपदेश देती है, तथापि उसका हृदयगत ध्येय भगवत्प्राप्ति है। अतएव गीता मानवता को भगवत्ता से ऊपर स्थान नहीं देती, और न उसे भगवान् के स्थान पर ही बिठाती है। गीता की दृष्टि में मानव–सेवा माधव–सेवा नहीं है, वरन् वह माधव–सेवा में ही मानव–सेवा मानती हैं। भगवत्प्राप्त पुरुष ही मनुष्यों की यथार्थ सेवा कर सकता है। मन, वाणी और कर्म से दिव्य तत्व का अनुभव एवं अभिव्यंजन ही जीवन का लक्ष्य है, यही जीवात्मा का गन्तव्य स्थान है।

कर्तव्य के लिये कर्तव्य का अनुष्ठान, केवल समाज–सेवा, लोकहित के कार्य, शाब्दिक सहानुभूति तथा इसी प्रकार से अन्य सिद्धान्त गीता की सार्वभौम–शिक्षा को विकृत और सीमाबद्ध कर देते है। भगवत्–स्वरूप की अभिव्यक्ति ही इसका मूल मन्त्र है, समाज–पूजा नहीं।

व्यावहारिक दृष्टि से जीवन को साधन के द्वारा सुव्यवस्थित बनाने और अपने स्वधर्म का ज्ञान प्राप्त करने में, अपने अधिक-से-अधिक अनुकूल पद्धति के द्वारा अग्रसर होने में एवं अपने स्वधर्म का निर्णय करके उसका तदनुसार अनुष्ठान करने में गीता के उपदेशों से बड़ी सहायता मिलती है। अपने स्वरूप के अनुकूल होने के कारण स्वधर्म स्वभावरूप होता है और अपने वास्तविक स्वरूप का अभिव्यंजक होने के कारण वह सहज होता है। स्वधर्म में सर्वश्रेष्ट भगवत्ता है और उसी में भगवदीय श्रेष्ठता रहती है। उसमें नित्य-पूर्णता विद्यमान रहती है। वह भगवान् की मुरली के स्वर-में-स्वर मिलाकर जीवन के उद्देश्य को पूरा करता है और इस प्रकार मर्त्यलोक में दिव्यता को उतार देता है। वह व्यक्ति के समग्र जीवन को भगवान् के एक दिव्य मधुर संगीत में परिणत कर देता है, क्योंकि वह विश्वात्मा सभी देशों और सभी जातियों के मनुष्यों में समान रूप से व्याप्त है।

गीता मनुष्य की इन्द्रियों को उसके अधीन करके, उसे उनका स्वामी बनाती है। उसका यह स्वामित्व नष्ट न होने पाये, इसके लिये गीता चाहती है कि वह भगवान् के बनाये हुए नियमों का दृढ़ता से निरन्तर पालन करे। इस प्रकार चलने वाले मनुष्य में एक उज्जवल सौम्यता एवं सौम्य कान्ति झलकती है। उसके कर्मों में योगियों का सा, उपासना में देवताओं का सा एवं ज्ञान में ऋषियों का सा तेज तथा गौरव दिखायी पड़ता है। गीता बाह्य उपरामता को धार्मिकता के रूप में नहीं सजाती। प्रकृति में अचलता नहीं है। मनुष्य अचानक अथवा एकाएक बादलों से नहीं टपक पड़ता। वह यन्त्र भी नहीं है। प्रत्येक का जन्म किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये होता है, जिसके लिये उसे भगवदीय शक्ति का साहय्य मिलता रहता है। जिन प्रश्नों को हल करने में मानवीय बुद्धि कुण्ठित हो जाती है, उन पर गीता प्रचुर प्रकाश डालती है। वह विश्व का नियमन करने वाले आध्यात्मिक, नैतिक, मानसिक, एवं भौतिक नियमों का निर्देश करती है। गीता अपना निराला तेज एवं प्रभाव रखने वाली जीवन-सुधा है।

इस सार्वभौम शास्त्र के विचारपूर्ण अध्ययन से अहिंसा का मूल तत्व प्रकट होता है। श्रीकृष्ण ने अर्जुन के अज्ञानजनित मोह का नाश करके उसके संकुचित स्वजन-अभिमान को दूर कर दिया। युद्धारम्भ जैसे अवसर पर अपने को भगवदीय न्याय की प्रतिष्ठा में निमित्त न मानना ही उनका अज्ञान था। श्रीकृष्ण अर्जुन के भय, शोक, अमर्ष, द्वेष, कामना और राग आदि उन दोषों को हर लेते हैं, जो हिंसा के दुष्ट सहचर हैं। बाहर से देखने में हिंसा का स्थूल आवरण अक्षुण्ण बनाये रखकर भगवान् ने अर्जुन के आध्यात्मिक आधार को सर्वथा परिवर्तित कर उन्हें अहिंसा की प्रतिमूर्ति बना दिया। इस प्रकार केवल भगवान् के आश्रित होकर, बिना किसी पुरस्कार की आशा के तथा उनके प्रति आत्मसमर्पण की भावना में स्थिर हुआ अर्जुन कर्म करता हुआ भी नहीं करता, मारता हुआ भी नहीं मारता;

क्योंकि गीता में उसकी क्रियाएँ अब अंहकार के विषैले दंश से मुक्त हो गयी हैं। अहिंसा और अमरता गीता में साथ–साथ चलती है। कूटस्थ साक्षी के रूप में रहना अर्थात् संसार में रहता हुआ प्रतीत होने पर भी उससे बिल्कुल निर्लिप्त रहना ही वह अमर जीवन है। इसी स्थिति में अकर्म में कर्म और कर्म में अकर्म का विज्ञान प्रकट होता है।

श्रीकृष्ण साक्षात् वह आत्मतत्व है, जो समस्त ज्ञान का केन्द्र एवं परिधि दोनों है। जगत् की लौकिकता के मोह स्वरूप के परे दृष्टि डालना; अपने स्वरूप के; अपनी स्वाभाविक चरित्रगत् विशेषताओं के, सहज प्रवृत्तियों के सम्बन्ध में विचार करना; नैसर्गिक प्रेरणाओं का तथा एकता एवं सामंजस्य उत्पन्न करने वाले रचनात्मक गुणों का अध्ययन कर उन पर सार्वभौम दृष्टि से विचार करना; विशाल मानवता के धरातल पर खड़े होकर सुख–दुःख का अनुभव करना और अपने अंदर भगवतत्व को अभिव्यक्त करना सीखो। यही मानव–जाति के प्रति श्रीकृष्ण का सनातन सन्देश है। इस प्रकार गीता धर्म और अध्यात्म को हमारे दैनन्दिन जीवन से वियुक्त नहीं करती।

संसार में आज एक धार्मिक भूकम्प हो रहा है। भौतिकवाद पर अवलम्बित वर्तमान वैज्ञानिक दृष्टिकोण से उत्पन्न हुई कृत्रिम जीवनचर्या का अनुगमन धर्म के उच्चतर आदर्शों को पीछे ढकेल देना और सुख की मृगतृष्णा के पीछे दौड़ना है। धर्म व्यापार की वस्तु नहीं है। धर्म विनिमय का सिद्धान्त नहीं है, सट्टे–बाजार में होने वाला मानवीय सौदा नहीं है। धर्म तो जीवन को दिव्य बनाने का एक शक्तिशाली साधन है। धर्म ही वह शक्ति है जो दिन के प्रकाश में भी तनकर चलती है, जबकि अन्य समस्त विज्ञान रात्रि के अन्धकार में भी आँखें बचाते हुए टेढ़े–मेढ़े मार्गों से छिपकर चलते हैं। धर्म की अधिदेवता ही मनुष्य की भगवत्ता का दावे के साथ प्रतिपादन करके मानवजाति की समस्याओं का निश्चयात्मक समाधान करती है। वही अलौकिक जगत् से परे का तत्व है और वही मनुष्य के भीतर रहने वाली वस्तु है। धर्म का बाह्य रूप केवल छिलका और भूसी है। यथार्थ आध्यात्मिक जीवन सनातन तत्व में स्थित और अनन्त में प्रतिष्ठित है। वह सदा अमर और नित्य वर्तमान है। वह सर्वदा पूर्ण है, जबकि अनित्य एवं क्षणभंगुर प्रातिभासिक जीवन की स्थिति इस परिवर्तनशील जगत् में है, वह प्रकृति एवं मन तक पंक में डूबा हुआ है। अतएव यह जीवन प्रतिक्षण होने वाली मृत्यु है। मृत्यु में ही जीना है। धर्म ही संतों का संतपना है, ज्ञानियों का ज्ञान है और बलवानों का बल है। यही परात्पर शान्ति है; यही व्यक्तियों एवं राष्ट्रों एवं समस्त जातियों को मनुष्यों के परस्पर भ्रातृत्व तथा भगवान् के पितृत्व से भी आगे एकमात्र आत्मभावना की ओर ले जाता है। संक्षेप में आज के विच्छिन्न एवं भ्रान्त जगत् के लिये यही एक ध्रुव आशा है। संसार के घावों को केवल यही निश्चित रूप से भर सकता है।

कहा जाता है कि गायत्री–मन्त्र के प्रत्येक अक्षर के पीछे एक–एक के हिसाब से

श्रीकृष्ण ने चौबीस गीताएँ कही हैं; परंतु उनमें से केवल भगवद्गीता तथा उत्तरगीता ही संसार में प्रसिद्ध हो पायीं। भगवद्गीता का संसार की प्रायः सभी भाषाओं में अनुवाद और व्याख्या हो चुकी है।

गीता के आध्यात्मिक अर्थ बाह्याचरणों के आडम्बरपूर्ण त्याग नहीं है। संसार का चरम तत्त्व मानव है। मनुष्य के चरम तत्त्व भगवान् है। और भगवान् का चरम तत्त्व है—'मैं' एवं 'मेरा' के त्याग द्वारा, सदसद्विवेक के द्वारा तथा एक अद्वितीय निर्गुण सत्ता के अपरोक्षानुभव के द्वारा उनकी प्राप्ति। आत्मतत्त्व (ब्रह्मतत्त्व) का ज्ञान, जिसकी भूख मनुष्य को सदा बनी रहती है, उसके क्षुद्र अहंकार की सीमा में नहीं ठहरता। अहंकार जीवन उसको ग्रहण ही नहीं कर सकता। वह अहंकार के परे है। सभी साधनों और फलों के अन्तर्गत भी है तथा उन सबका चरम फल भी वही है। इसकी प्रतीति होती है एकत्व की अनुभूति में, उस नैसर्गिक एवं विशुद्ध ज्ञान की अवस्था में, जो अन्तरतम एवं अपरोक्ष है, जहाँ जानने का अर्थ है वही बन जाना और वही बन जाना ही जानना है।

प्रतिदिन प्रातःकाल एवं सायंकाल गीता के एक या दो ही श्लोकों के भाव का मनन, चिन्तन एवं ध्यान मनुष्य के जीवन में दिव्य सुधाधारा का संचार कराने में बहुत बड़ा निमित्त बन जाता है।

यदि इन पंक्तियों को पढ़कर किसी के मन में भगवान् के लिये तीव्र लालसा जाग उठे और वह सच्चाई के साथ विस्तारपूर्वक भगवद्गीता के गम्भीर अध्ययन में लग जाये तो इस क्षुद्र लेख के उद्देश्य की उचित रीति से पूर्ति हो जायेगी।

भगवान् श्रीकृष्ण सबके सखा, तत्त्वोपदेशक और मार्गदर्शक बनें।

❀❀❀

साधु का स्वभाव

नान्तर्विचिन्तयति किञ्चिदपि प्रतीप-
माकोपितोऽपि सुजनः पिशुनेन पापम्।
अर्कद्विषोऽपि हि मुखे पतिताग्रभागा-
स्तारापतेरमृतमेव कराः किरन्ति।।

चुगली खाने वाले दुष्ट मनुष्य के द्वारा क्रोध दिलाने पर भी साधु पुरुष उसके विरुद्ध अमंगलमय प्रतिशोध की बात अपने मन में नहीं लाते। राहु चन्द्रमा का सहज विद्वेषी है; किंतु चन्द्रमा की सुधामयी किरणें उसके मुख में पड़कर भी अमृत की ही वर्षा करती हैं।

हिमालय के अमर महायोगी

पूर्णचन्द्र पन्त

रतनलाल जी, नृसिंह मूर्ति जी तथा पारसनाथ जी को शरण में लेकर अनुग्रहीत करना

रतनलाल जी (योगिराज कृष्णानन्द जी)

रतनलाल जी मुजफ्फरनगर उत्तर प्रदेश के निवासी थे। घरेलू झगड़ों के कारण घर से विरक्त होकर ये उत्तराखण्ड की यात्रा पर निकल पड़े। वे २–४ दिन ऋषिकेश, स्वर्गाश्रम आदि स्थानों पर रुके और फिर बद्रीनाथ की ओर चले गये। वे किसी परिपूर्ण गुरु की खोज में थे किन्तु उन्हें कोई सिद्ध महापुरुष नहीं मिला। अतः वे निराश होकर ऋषिकेश लौट आये। योगाचार्यों की खोज में वे कई दिन तक यहां वहां भ्रमण करते रहे। बड़े–बड़े मंडलेश्वरों एवं मठाधीशों के दर्शन से इनके मन को तनिक भी शान्ति नहीं मिली। क्योंकि वे एक ऐसे योगैश्वर्य सम्पन्न महापुरुष की शरण ग्रहण करना चाहते थे जो उन्हें अन्तर्जगत (रुहानी दुनिया) में प्रवेश करा सके।

अन्त में अपने उद्‌देश्य की पूर्ति न होते देखकर वे वापस अपने घर लौटने को तैयार हो गये और रेलवे स्टेशन की ओर चल पड़े। चलते–चलते रेलवे रोड पर उन्हें एक नया आश्रम दिखाई दिया जिसके भवन की दीवार पर और मुख्यद्वार के ऊपर मोटे अक्षरों में लिखा था–योग साधन आश्रम। जिसे पढ़कर उनके निराश मन में आशा की एक किरण प्रकट हो गयी। पुण्य प्रारब्धवश वे बड़ी उत्सुकता से आश्रम के अन्दर चले गये। उस समय प्रभु जी दरबार के आगे आराम कुर्सी पर विराजमान थे। उन्होंने बड़ी विनम्रता से प्रभु जी को प्रणाम किया और उनका संकेत पाकर बैठ गये। प्रभुजी के दर्शन से उनके मन को अपार शान्ति मिली। उन्हें यह विश्वास हो गया कि–पंडित वेश में अपने असली रूप को छिपाये ये कोई सिद्ध योगिराज हैं और इनके द्वारा ही मेरा कल्याण हो सकता है। अतः अब बिना कोई विचार किये इन्हें अपना गुरु बना लेना चाहिये। पर इनके आगे अपने भाव कैसे प्रकट किये जायें यह उनकी समझ में नहीं आ रहा था। इतने में अन्तर्यामी प्रभु जी स्नेह भरी दृष्टि से उनकी ओर देखते हुए गम्भीर वाणी में बोले–कहो तुम क्या कहना चाहते हो ?

प्रभु जी की दृष्टि पड़ते ही रतनलाल जी पर एक प्रकार का शक्तिपात हो गया। वे

रोमांचित हो गये और गदगद वाणी में बोले–प्रभो। मैं सब कुछ त्यागकर आपकी शरण में आया हूँ, मुझे शिष्य रूप में अपनाकर अनुग्रहीत कीजिये। रतनलाल जी की सरलता और विनम्रता को देखकर प्रभु जी बड़े प्रसन्न हुए और उन्हें आश्रम में ठहरा दिया। दो–चार दिन बाद उन्हें योगदीक्षा देकर स्थायी रूप से अपने पास रख लिया। उन्होंने उसी दिन से ध्यानाभ्यास आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही प्रभु जी की आज्ञा से जीवन तत्व साधन भी करना आरम्भ कर दिया। वे सुबह–शाम अपनी साधना किया करते थे और खाली समय में सेवा में लगे रहते थे। जिस दिन उन्हें दीक्षा मिली उसी दिन से उनका ध्यान लगना आरम्भ हो गया और वह उत्तरोत्तर बढ़ता चला गया। ध्यान में उन्हें विलक्षण अनुभव हुआ करते थे। ध्यानावस्था में उन्हें प्रभुजी के दर्शन प्रायः नित्य ही हो जाते थे, उनके साथ वार्ता हुआ करती थी, उनकी हर प्रकार की शंकाओं का समाधान प्रभुजी ध्यान में कर दिया करते थे। साधना के सम्बन्ध में, आश्रम की व्यवस्था के सम्बन्ध में प्रभुजी उन्हें ध्यान में ही आदेश दिया करते थे। प्रभुजी की अनुपस्थिति में आश्रम की देखरेख का काम रतनलाल जी ही किया करते थे।

वे कई वर्षों तक योग साधन आश्रम ऋषिकेश में विरक्त भाव से रहकर साधना करते रहे और अपनी साधना के साथ–साथ आश्रम की सेवा भी पूरे उत्साह के साथ करते रहे। बाद में उन्होंने सन्यास ले लिया और वे योगी कृष्णानन्द के नाम से विख्यात हुये।

योगिराज पं. नृसिंह मूर्ति जी

नृसिंह मूर्ति जी आन्ध्रप्रदेश के निवासी थे। वे बहुत छोटी आयु मे ऋषिकेश में प्रभु जी के पास आ गये थे। प्रभुजी ने उन्हें बड़े प्यार से अपने पास रखा, उन्हें ध्यानयोग की दीक्षा दी और सब प्रकार के आसन तथा नेती, धौती, न्यौली, वस्ती आदि यौगिक क्रियायें सिखाई, वे कई वर्षों तक प्रभु जी के संरक्षण में योगसाधना आश्रम ऋषिकेश में रहकर योग साधना और अपना अध्ययन कार्य करते रहे। बाद में प्रभु जी से आज्ञा लेकर वे अपने घर हैदराबाद (आन्ध्रप्रदेश) चले गये और वहाँ उन्होंने योग प्रचार का कार्य आरम्भ कर दिया। समूचे आन्ध्रप्रदेश और मद्रास (तमिलनाडु) में उनका योग प्रचार कार्यक्रम चलता रहा। जीवन के अन्तिम क्षणों तक वे योगविद्या के प्रचार प्रसार में संलग्न रहे।

पारसनाथ जी

पारसनाथ जी उत्तर प्रदेश के बलिया जिले के निवासी थे। वे बड़े सरल और विनम्र थे। पुण्य संस्कार वश वे प्रभु जी की शरण में पहुँचे थे और प्रभु जी ने भी कृपापूर्वक उन्हें योगदीक्षा देकर अपनी सेवा में रख लिया था। वे नियमित रूप से ध्यानाभ्यास किया करते

थे और शेष समय में प्रभु जी की सेवा में तत्पर रहा करते थे। जिसके फलस्वरूप उनकी ध्यानस्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई। वे ध्यान में स्वार्गादि लोकों के दर्शन किया करते थे और इन्द्रदेव से बातें किया करते थे।

एक बार श्री प्रभु जी माघ के महिने में ऋषिकेश आश्रम में अपने कुएं पर स्नान करने को तैयार हुए। कई दिनों से लगातार वर्षा रहने से ठंड अधिक थी। पारसनाथ जी प्रभुजी को स्नान कराने के उद्‌देश्य से सामने खड़े थे। प्रभुजी ने पारसनाथ जी से विनोद में कहा–पारस ! इन्द्र से कहो कि वह कुछ समय के लिये बादल हटा दे। यह सुनकर पारसनाथ जी झट से ध्यान में बैठ गये और ध्यानावस्था में इन्द्रपुरी में पहुँचकर इन्द्र से बोले–इन्द्रदेव ! प्रभुजी की आज्ञा है कि बादल हटा दो। बादल तुरन्त हट गये और तेज धूप निकल आई। प्रभु जी ने ब्रह्मचारी चन्द्रमोहन जी को भेजकर पारसनाथ जी को ध्यान से उठवा दिया। पारसनाथ जी को मीठी डाँट लगाते हुये प्रभुजी बोले–अरे पारस हमने तो मजाक में तुमसे वह बात कही थी और तुमने सचमुच ही इन्द्र को आदेश दे दिया। इस प्रकार छोटी–मोटी बातों में ध्यान शक्ति का प्रयोग मत किया करो। पारसनाथ जी काफी समय तक प्रभुजी की सेवा में रहे और उनके लीलावसान के पश्चात् अपने घर बलिया चले गये। प्रभुजी की पावन तपस्थली सिद्ध गुफा सवाई और ऋषिकेश आश्रम के उत्सवों में वे बराबर सम्मिलित होते रहे। अब तीन वर्ष पूर्व उनका शरीर शान्त हो चुका है।

ध्यानाभ्यासी महात्मा पर दृष्टि द्वारा शक्तिमान करके उसे दिव्य दृष्टि प्रदान करना।

ऋषिकेश में गंगा जी के तट पर बने त्रिवेणी घाट से कुछ आगे एक ध्यानाभ्यासी महात्मा नित्यप्रति ध्यान में बैठा करते थे किन्तु ध्यानास्थिति में किसी प्रकार की प्रगति नहीं हो रही थी। श्री प्रभुजी प्रायः नित्य ही शाम के समय अपने कुछ सत्संगियों के साथ गंगातट पर घूमने जाया करते थे। एक दिन वे त्रिवेणी घाट के ऊपरी ओर गंगा जी के किनारे किनारे ऊबड़–खाबड़ मार्ग से होते हुए कुछ आगे निकल गये। आँगे चलकर उन्होंने देखा कि उस नीरव स्थान पर एक स्वच्छ चट्टान पर एक महात्मा शान्त भाव से ध्यान में बैठा हुआ था। प्रभुजी ने उसकी ओर कुछ क्षण गौर से देखा और फिर कुछ कदम आगे चलकर वापस आश्रम लौट आये। अगले दिन ठीक उसीसमय वे अपने भक्तों के साथ पुनः उसी स्थान पर गये और उस महात्मा की ओर गौर से देखकर वहीं से बड़ी शीघ्रता से आश्रम की ओर लौट पड़े। यह देख सभी सत्संगियों को बड़ा आश्चर्य हो रहा था कि–प्रभुजी इस प्रकार किसी को नहीं देखा करते। इस महात्मा को इन्होंने कल क्यों इतने

गौर से देखा और आज पुनः घूमने के बहाने इसी को देखने चले आये हैं। इसमें अवश्य ही कोई रहस्य की बात है। सभी लोग इस बात को लेकर आपस में चर्चा करते रहे।

यह रहस्य अगले दिन तब खुला जब वह महात्मा दण्डवत प्रणाम करता हुआ आश्रम में पहुँचा और प्रभुजी के चरणों से लिपटकर उन्हें अपनी अनुभूति सुनाई। महात्मा ने बताया कि–परसों ध्यान में मैंने आपको अपने पास खड़े देखा था। फिर आपने अपना हाथ उठाया। उस हाथ से तेज की धारा निकली और वह तेज मेरे शरीर में विलीन हो गया। उसी समय से मुझे अपने इष्टदेव श्री कृष्ण के दर्शन हर समय खुली आँखों हो रहे हैं। आँखें बन्द करने पर हर समय दिव्य रासलीला के दर्शन होते रहते हैं। आपके परम तेजस्वी रूप में दर्शन प्राप्त हो जायें। कल शाम जब मैं ध्यान में बैठा तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि–आप पुनः मेरे पास आये और मेरे पास खड़े होकर बोले–चिन्ता मत कर अब तू स्वयं ही हमारे पास चला आयेगा। आज प्रातः जब मैं उसी शिला पर ध्यान में बैठा तो मैंने देखा कि–मेरी आँखों के सामने तेज की एक धारा बन गई और उस तेज के अन्दर रास्ता बना हुआ दिखाई दिया। फिर मुझे आवाज सुनाई दी कि–इसी रास्ते से चला आ, तू हमारे पास पहुँच जायेगा। उस तेज के अन्दर मुझे यह आश्रम तथा आपके परम तेजोमय रूप के दर्शन भी हुए। तब मैं ध्यान से उठकर उस प्रकाश का अनुसरण करता हुआ बन्द आँखों आपके चरणकमलों तक पहुँचा हूँ। अब आप कृपा करके मुझे अपनी शरण में ले लीजिये। उसकी प्रार्थना पर प्रभु जी ने उसे योगदीक्षा देकर आश्रम में ही रख लिया। दीक्षा के उपरान्त उसकी ध्यानास्थिति उत्तरोत्तर बढ़ती चली गई और वह उठते, बैठते, सोते, जागते हर वक्त ध्यानमग्न रहा करता था। उसकी आँखें हर समय बन्द रहा करती थीं।

ऋषिकेश में बैठे बैठे दो कृष्ण भक्तों पर शक्तिपात और उन्हें उच्च ध्यानास्थिति प्रदान करना।

वृन्दावन में दो कृष्णप्रेमी बालक कृष्णदर्शन के लिये व्याकुल होकर बरसाना के निकट गहर वन में इधर उधर घूम रहे थे। प्रभु जी उस समय ऋषिकेश आश्रम में अपनी आराम कुर्सी पर विराजमान थे। उन बच्चों पर उनकी दृष्टि पड़ गयी और उन पर उन्हें दया आ गई। उनमें जो लड़का अधिक रो रहा था। उस पर उन्होंने तत्काल शक्तिपात करके श्री कृष्ण के दर्शन करा दिये और कहा–जा तुझ पर कृपा हो गई है अब तू कामवन चला जा वहाँ तुझे हर समय श्री कृष्ण दर्शन होते रहेंगे। यह सुनकर वह लड़का आनन्द से विभोर होकर कामवन चला गया। तब उसका साथी दूसरा लड़का और अधिक व्याकुल हो गया। वह रोता हुआ बिहारी के मन्दिर में पहुँचा और उसने यह प्रतिज्ञा कर ली थी कि आज यदि बिहारी जी ने मुझे दर्शन नहीं दिये तो मैं यमुना जी में कूदकर अपने प्राण त्याग दूंगा। इस

संकल्प के साथ वह बिहारी जी के मूर्ति के सामने खड़ा होकर फूट–फूटकर रोने लगा। यह देख दया निधान श्री प्रभुजी ने ऋषिकेश में अपनी कुर्सी पर बैठे बैठे आशीर्वादात्मक मुद्रा में अपना हाथ उठाया और हाथ से तीव्र प्रकाश की धारा निकली तथा वह प्रकाश (तेज की धारा) वृन्दावन में उस बालक के सिर पर गिरी। जिससे उसे तत्काल बिहारी जी के दर्शन हो गये और बिहारी जी ने उसे आज्ञा दी कि अब तुम पर कृपा हो गई है, अब तुम निधिवन चले जाओ।

योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज उन दिनों वृन्दावन में ही थे। उन्होंने ध्यान में यह घटना ज्यों की त्यों देख ली थी। बाद में उन्होंने यथार्थता का पता लगाने के लिये उन लड़कों की तलाश की और उनसे सारी बात पूछी कि तुम लोगों पर किस प्रकार की कृपा हुई थी तो उन्होंने ठीक वैसा ही बताया जैसा श्री चन्द्रमोहन जी ने ध्यानावस्था में देखा था। इस घटना का उल्लेख उन्होंने अपनी आत्मकथा में भी कर रखा है।

❊❊❊

भजन

प्रेषक–मोतीराम गर्ग, अलुपुर

तेरे कट जायेंगे पाप, प्रभु रामलाल गुण गा ले।
तेरा हो जैगा उद्धार, प्रभु चरनन शीश झुका ले।।
जो शरण प्रभु की आता है, शीघ्र मुक्ति पाता है।
भव सागर तर जाता है, कष्ट नहीं हो पाता है।
जो चाहे अपना कल्याण, प्रभु रामलाल गुण गा ले।

क्यों करता मेरा मेरी, न लगा जरा सी देरी,
इस जीवन का क्या भरोसा कल होगी रात अन्धेरी
समझ बूझ कर चलता जा, तू ज्योत से ज्योत जला
प्रभु नर रूप में अवतार है, जग के पालन हार हैं
भक्तों के खेवनहार हैं, दुष्टों के संहार हैं
तीन गुणों का काट के फंदा, भगवत दर्शन पा ले।।

श्वांस श्वांस सोहं रटता जा, आसन पदम लगा कर
मन को कर अचल हृदय में, योग से कुंडली जगा कर
मोतीराम कर जीवन अर्पण कर, जो चाहे सो फल पाले

ओंकार के आश्रय से अमृत की प्राप्ति

'ॐ' यह अक्षर ही उग्दीथ है, यों समझकर इसकी उपासना करनी चाहिये, क्योंकि यज्ञ में उग्दाता नामक ऋत्विज् 'ॐ' इस अक्षर का ही उच्चस्वर से गान करता है। उस ओंकार की व्याख्या की जाती है।

यह प्रसिद्ध है कि मृत्यु से डरते हुए देवताओं ने ऋक्, यजु: और सामरूप तीनों वेदों में प्रवेश किया–उनका आश्रय लिया। उन्होंने गायत्री आदि भिन्न–भिन्न छन्दों के मन्त्रों से अपने को ढक दिया–उन्हें अपना कवच बनाया। उन्होंने जो भिन्न–भिन्न छन्दों से युक्त मन्त्रों द्वारा अपने को आच्छादित कर लिया, इसी से वे 'छन्द' कहलाये। जो आच्छादन करे, वही छन्द–यह 'छन्दस्' शब्द की व्युत्पत्ति है।

जिस प्रकार मछली पकड़ने वाला धीवर जल के भीतर भी मछली को देख लेता है, उसी प्रकार देवताओं को मृत्यु ने उन ऋक्, साम एवं यजुर्वेद के मन्त्रों की ओट में भी देख लिया–वहाँ भी उसने इनका पिण्ड नहीं छोड़ा। वे देवतालोग भी इस बात को जान गये; अतः ऋक्, साम और यजुर्वेद के मन्त्रों से ऊपर उठकर वे स्वर में अर्थात् ओंकार में ही प्रविष्ट हो गये।

जब कोई ऋक् का–ऋग्वेद के मन्त्रों का ज्ञान प्राप्त कर लेता है, तब वह निःसंदेह 'ॐ' इस प्रकार ही उच्चस्वर से उच्चारण करता है। इसी कारण साम को और वैसे ही यजुर्वेद को जानने वाला भी 'ॐ' का ही गान करता है। इस प्रकार यह सिद्ध हुआ है कि जो यह ओंकार रूप अक्षर अर्थात् उसका वाच्यभूत परमात्मा है, वही ऊपर बताया हुआ स्वर है; वही अमृत–मृत्यु से छुड़ाने वाला एवं भयरहित स्थान है। उसका आश्रय लेकर देवतालोग अमर और निर्भय हो गये। जो ओंकार को इस रूप में जानकर उसके अर्थभूतम अविनाशी परमेश्वर की स्तुति एवं उपासना करता है तथा एकमात्र इसी अमृतरूप, सर्वथा भयरहित एवं अविनाशी परमात्मा के स्वरूपभूत इस स्वर में प्रविष्ट हो जाता है–उसकी शरण में चला जाता है; वह उसमें प्रवेश करके उसी अमृत को प्राप्त कर लेता है, जिस अमृत को पूर्वोक्त प्रकार से देवताओं ने प्राप्त किया था।

मीडिया पोस्ट

हृदय स्पर्शी सेवा

उत्पाद (ब्राण्ड) को बाज़ार में स्थापित करने के लिए एक अनोखी एवं प्रभावशाली योजना –

<u>निम्न माध्यमों से विज्ञापन की सुविधा</u>

1. डाक वस्तुओं पर स्पेस आफ़र (स्थान चयन) का विज्ञापन
2. लैटर बॉक्सों पर स्थान का प्रायोजन (स्पौंसरशिप)
3. मेल वाहनों पर स्थान का प्रायोजन (स्पौंसरशिप) दर : रु. 1000 प्रति पैनल प्रतिमाह पेंटिंग चार्ज रु. 500.00 प्रति पैनल
4. डाकघर परिसर में होर्डिंग लगाकर विज्ञापन दर रु. 5.50 प्रति वर्ग फीट प्रति माह
5. डाकघर के अन्दर या बाहर ग्लोसाइन बोर्ड अथवा पोस्टर लगाकर विज्ञापन दर रु. 100/- प्रति वर्ग फुट प्रति माह
6. डाकघर के पत्रों पर स्टाम्प कैंसिलेशन की डाई लगाकर विज्ञापन दर रु0 100/- प्रति डाई प्रतिदिन डाई का मूल्य रु0 400/-
7. मेघदूत पोस्ट कार्ड के माध्यम से विज्ञापन अर्थात् पोस्ट कार्ड के आधे भाग पर उत्पादों का विज्ञापन : दर रु. 2/- प्रति पोस्ट कार्ड। मेघदूत पोस्ट कार्ड का विक्रय मूल्य केवल 25 पैसे मात्र।

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/06-08

July 2006

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER

BOOK-POST

श्री/सुश्री ____

संस्थापक–योग योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डा. दासलाल शर्मा के लिए राष्ट्रीय ब्लॉक एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा–3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सँवाई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. रजि. नं. UPHIN/2004/14566. सम्पादक : आचार्य ब्र. (डॉ.) दासलाल शर्मा